CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५१८

हि. १५८

9.6

श्रावस्ती और
उसके नरेश
सुहलदेव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गार

राणसी-५

र उसके नरेश

...और...रुद्रदमन...राज...

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ट्रैक्ट नं० ३०

हि० १५२

ॐ

श्रावस्ती और उसके नरेश सुहलदेव

लेखकः—
श्री कामताप्रसाद जैन, M. R. A. S., D. L.,
सम्पादक, 'वीर' और 'जैनसिद्धान्तभास्कर'
अलीगंज, (एटा)

वर्णी दि. जैन (शोध) संस्थान
५१२

प्रकाशकः—
श्री महावीर प्रकाशन,
(अखिल विश्व जैन मिशन)
अलीगंज, (एटा)

प्रथमावृत्ति १०००

सन् १९५० ई०

मूल्य १)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi.

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

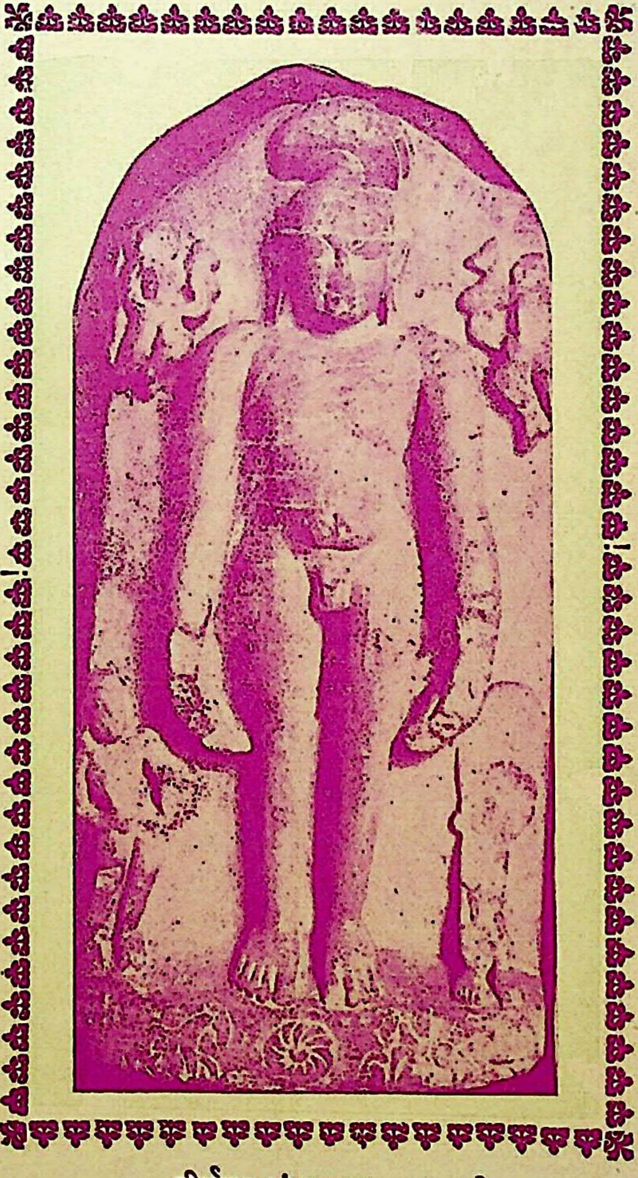

तीर्थङ्कर संभवनाथ—श्रावस्ती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पं० उदयचंद जी जैन
प्राध्यापक का० हि० वि० वि०
उपमंत्री श्री गणेश वर्णी दि. जैन (शोध) संस्थान
वाराणसी द्वारा भेंट

विषय-सूची

क्रम संख्या

क्रम संख्या		पृष्ठ
(अ) भूमिका—	....	१
(ब) दो शब्द—	....	४
१—जैन शासन—	....	१
२—श्रावस्ती की झाँकी—	....	५
३—श्रावस्ती का अवशेष—	....	१३
४—श्रावस्ती में श्रमण संस्कृति—	....	२०
५—श्रावस्ती के राजवंश—	....	३८
६—भर अथवा भार राजवंश—	....	४६
७—वीरवर सुहिलदेव और सय्यद सालार मसऊद		५८
८—राजा सुहिलदेव और जैन धर्म—	...	६६
९—सहेठ महेठ से उपलब्ध पुरातत्व—	....	७५
१०—अन्तिम झाँकी—	... ...	८४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चित्र-सूची

क्रम संख्या		पृष्ठ
१—तीर्थङ्कर सम्भवनाथ, श्रावस्ती	...	१
२—म० गौतम बुद्ध ...	...	१६
३—सहेठ महेठ में प्राचीन जैन मन्दिर	...	१८
४—सहेठ महेठ में प्राचीन जैन मन्दिर अवशेष		१८
५—वृषभाचार्य का अग्नि-उपसर्ग	...	२७
६—तीर्थङ्कर नेमिनाथ की मूर्ति	....	३६
७—तीर्थङ्कर श्रेयांसनाथ की मूर्ति	...	३७
८—वीरवर सुहृलदेवराय ससैन्य	....	६२
९—आदिनाथ तीर्थङ्कर की मूर्ति	....	७०
१०—अम्बिका देवी की मूर्ति	...	७१
११—चैत्यवृक्ष शिलापट	...	७५
१२—अन्य चैत्यवृक्ष शिलापट	...	७८
१३—शिलालेख ...	...	८१
१४—शिलालेख	...	८२
१५—जैन धर्मशाला	....	८३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भूमिका

श्रावस्ती भारत के उन प्राचीन नगरों में से है, जिनका पुरातत्त्व की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्व है और जो भारतीय साहित्य में अमरत्व प्राप्त कर चुके हैं। साकेत, काशी, पाटलिपुत्र, राजगृह, कौशांबी, उज्जयिनी, मथुरा, तक्षशिला आदि प्रसिद्ध नगरों की तरह श्रावस्ती बहुत समय तक राजनैतिक एवं सांस्कृतिक केन्द्र के रूप में रही। बौद्ध, जैन एवं हिन्दू धर्म इस नगरी में एक दीर्घ काल तक विकसित होते रहे। श्रावस्ती के भग्नावशेष इन धर्मों से सम्बन्धित कितनी ही छोटी-बड़ी घटनाओं की स्मृति संजोये हुए हैं। पुरानी नगरी के खंडहर और टीले गोंडा, बहराइच जिलों के सीमावर्ती दो गाँवों-सहेठ-महेठ में काफी विस्तार में फैले हैं।

यद्यपि सहेठ-महेठ के टीलों आदि की पूरी छानबीन अभी तक नहीं हो सकी, तो भी इस ओर काफी काम हो चुका है। जनरल कनिंघम ने यहाँ १८६३ ई० में उत्खनन का कार्य प्रारम्भ किया। उन्हें सहेठ के एक पुराने खंडहर से बोधिसत्त्व की एक कुषाण कालीन मूर्ति प्राप्त हुई, जो उस पर खुदे हुए लेख के अनुसार भिक्षु बल के द्वारा वहाँ प्रतिष्ठापित की गई थी। यह बल मथुरा का रहने वाला था और इसने मथुरा, सारनाथ आदि अन्य स्थानों पर भी ऐसी ही विशाल बोधिसत्त्व-प्रतिमाएँ स्थापित करवाई थीं। कनिंघम के बाद वेनेट, होय, फोगल, दयाराम सहानी, मार्शल आदि पुरातत्त्ववेत्ताओं ने भी सहेठ-महेठ में खुदाई करवाई। उनके प्रयत्नों के फलस्वरूप विविध प्रकार की सामग्री प्राप्त हुई, जो ई० पू० चौथी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शती से लेकर ई० १२ वीं शती के अन्त तक की है। इस सामग्री के अन्तर्गत स्तूपों, विहारों एवं मन्दिरों के ध्वंसावशेष, बौद्ध, जैन तथा कुछ हिन्दू प्रतिमाएँ, मिट्टी की छोटी-बड़ी मूर्तियाँ, उत्कीर्ण ईंटें, अभिलिखित मुहरें, ताम्र पत्र तथा सिक्के हैं। इनमें से कुछ चीजें बड़े महत्त्व की हैं। पत्थर की मूर्तियों में से कई पर लेख हैं। ताम्रपत्रों में कन्नौज के राजा गोविन्दचन्द्र का भी एक ताम्रपत्र है, जिससे यह निश्चित रूप से ज्ञात हो सका है कि सहेठ प्राचीन जेतवन विहार का स्थान है तथा महेठ प्राचीन श्रावस्ती नगरी का।

श्रावस्ती के सम्बन्ध में बौद्ध, जैन एवं वैदिक साहित्य में प्रभूत उल्लेख प्राप्त होते हैं। बौद्ध तथा जैन साहित्य में इसका नाम 'सावत्थी' मिलता है और इसके विषय में कितनी ही मनोरंजक गाथाएँ प्राप्त होती हैं। इन ग्रन्थों में इस नगरी के नामकरण की बावत प्राय: यह लिखा मिलता है कि सवत्थ नामक मुनि के द्वारा यहाँ पर निवास करने के कारण नगरी 'सावत्थी' कहलाई। पुराणादि ब्राह्मण ग्रन्थों से पता चलता है कि श्रावस्त या श्रावस्तक नामक राजा ने इस नगरी की स्थापना की, जिससे इसका 'श्रावस्ती' नाम पड़ा। जो हो इतना निर्विवाद है कि श्रावस्ती बहुत प्राचीन काल से (कम से कम ई० पू० सातवीं शती से) भारत की एक समृद्ध नगरी हो गई थी और कला-कौशल तथा व्यापार का केन्द्र बन चुकी थी। यहाँ कई बड़े व्यापारिक मार्ग मिलते थे। एक मार्ग दक्षिण-पूर्व में राजगृह की ओर से आता था, जो श्रावस्ती होकर उत्तर-पश्चिम में मथुरा होता हुआ तक्षशिला जाता था। दूसरा बड़ा मार्ग श्रावस्ती से कौशांबी होकर विदिशा तथा उज्जयिनी की ओर जाता था। महात्मा बुद्ध के समय से श्रावस्ती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नगरी का विकास विशेष कर एक धार्मिक एवं सांस्कृतिक केन्द्र के रूप में हुआ। प्रसिद्ध कोशल राज्य की मुख्य राजधानी बनने का श्रेय इस नगरी को कई शताब्दियों तक प्राप्त रहा। यहाँ के प्रसेनजित जैसे उदारचेता शासक भारतीय इतिहास के अमर रत्न हैं।

इस महत्त्वपूर्ण नगरी के सम्बन्ध में श्री कामताप्रसाद जैन ने हिंदी में प्रस्तुत पुस्तक लिखकर एक कमी को दूर किया है। श्रावस्ती का संक्षिप्त क्रमबद्ध ऐतिहासिक वृत्तान्त देने के साथ आपने नगरी की स्थापना नामकरण आदि विषयों का भी विवेचन किया है। इस नगरी के स्वनामधन्य राजा सुहिलदेवराय का शौर्यपूर्ण जीवन-वृत्त भी दिया गया है। दुर्भाग्य से इस शासक के सम्बन्ध में भारतीय साहित्य में यथेष्ट विवरण उपलब्ध नहीं होता।

लेखक की कुछ मान्यताएँ अवश्य ही विवादग्रस्त कही जा सकती हैं। श्रावस्ती के परवर्ती नाम सहेठ-महेठ या (सहेठि-महेठि) की जो व्युत्पत्ति की गई है वह विचारणीय है। परवर्ती भर या भार वंश के बहुत से लोग जैन धर्म के अनुयायी थे, पर जैसा कि प्राचीन लेखों से प्रकट है, भारशिव लोग शैव मत को मानते थे।

आशा है कि इन तथा कतिपय अन्य प्रश्नों पर विद्वान् लोग गम्भीरता से विचार करेंगे। मैं अन्त में अध्यवसायी लेखक के उनके इस प्रयास पर साधुवाद देता हूँ।

कृष्णदत्त वाजपेयी
२८—४—५०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दो शब्द

गतवर्ष बहराइच के जैन बन्धुओं ने प्रेरणा की कि मैं श्रावस्ती पर एक पुस्तक लिखदूं। श्रावस्ती एक प्राचीन नगर होने के साथ ही जैनतीर्थ भी है और बहराइच एवं अवध का जैन समाज उसका जीर्णोद्धार करने के लिये कटिबद्ध है। मैं पहले से ही इस ओर अग्रतिशील था—मेरी इच्छा है कि प्राचीन नगरों का परिचायक एक कोष तैयार करूँ। 'बहराइच के बन्धुओं को यह प्रेरणा मेरे निश्चय में सहायक है'—मैंने यह अनुभव किया और भाई सुमेरचन्द्रजी जैन शास्त्री बहरायच को अपनी स्वीकृति लिख दी; किन्तु जब पुस्तक लिखने बैठा तो बिखरी हुई सामिग्री को अल्प समय में संकलित करके पुस्तक लिख देना उतना सुगम न भासा, जितना मैं समझता था। उसके लिए मुझे बाहर से साहित्यक सामिग्री मँगानी पड़ी और उसका आडोलन करना पड़ा। उधर सुमेरचन्द्रजी का तीव्र 'तकाजा' रहा कि मैं जल्दी ही पुस्तक प्रकाशित करादूँ। उनको मैंने लिखा कि वह उधर के मन्दिरों और मूर्तियों पर अंकित लेखों एवं शास्त्रों में लिखी हुई प्रशस्तियों का संग्रह करके भिजवादें; परन्तु वह इस कार्य को न कर सके। कदाचित यह सामिग्रो उपलब्ध होती तो अधिक ऐतिहासिक प्रकाश पड़ने की संभावना थी। इस परिस्थिति में प्रस्तुत पुस्तक जैसी बन पड़ी है, पाठकों के हाथों में समर्पित है। निस्सन्देह वह अपने विषय की पहली साहित्यक कृति है।

कतिपय विद्वान् जैनधर्म में वर्णित अहिंसा के स्वरूप को न समझकर यह मानने की ग़लती करते हैं कि जैन राजा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुस्लिम-आक्रमणकारियों का मुकाबला नहीं कर सके थे। सुहिलदेवराय भी युद्ध करने से हिचकते थे। किन्तु इतिहास इस मान्यता के ठीक विपरीत परस्थिति का परिचायक है। भारत पर सबसे पहले ईरानियों ने आक्रमण किया था और उनके आक्रमण को विफल करने का श्रेय जैन राजाओं—सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार और सम्राट् नन्दवर्द्धन को प्राप्त था। इसी तरह यवनों (Greeks) को भारत से बाहर वीरवर चन्द्रगुप्त मौर्य और कलिङ्ग चक्रवर्ती खारवेल ने खदेड़ा था—ये दोनों सम्राट् जैनधर्म के स्तम्भ थे। उसी प्रकार मुसलमानों के पहले आक्रमण को उत्तरापथ में जैन-वीर सुहिलदेवराय ने विफल किया तो दक्षिण में विजयनगर के सम्राटों ने उनके छक्के छुड़ाये। इन विजयनगर सम्राटों में कई जैनधर्म के भक्त थे और उनके कई सेनापति जैन धर्मानुयायी थे। सारांश यह कि जैन अहिंसा किसी भी व्यक्ति को अपनी लौलिकक धर्म-मर्यादा से विचलित नहीं करती! जैन साधु ही अहिंसा को पूर्णतः पालते हैं—वे स्वयं कष्ट सह लेंगे, पर दूसरे को कष्ट नहीं देंगे। प्रस्तुत पुस्तक में ही पाठक श्री वृषभसेनाचार्य के धर्मोत्सर्ग का रोमांचकारी उदाहरण पढ़ेंगे। किन्तु एक गृहस्थ अहिंसा का पूर्ण अंशों में पालन नहीं कर पाता है। अतएव वह अपने कर्तव्य का पालन यथासम्भव कम से कम हिंसा हो, यह ध्यान रखकर करता है। वह विरोधी हिंसा का त्यागी नहीं; क्योंकि विद्रोहियों से धर्म, देश और राष्ट्र की रक्षा करना उसका कर्तव्य है। वीरवर सुहिलदेवराय ने जैन गृहस्थ के इस आदर्श का ही अनुकरण किया था। उनका अहिंसा धर्म आततायियों के संकट से देश को मुक्त करने की ही शिक्षा देता था। इसीलिये उन्होंने सैयदमसऊद से सफल युद्ध लड़ा था। प्रस्तुत पुस्तक इस भ्रान्ति का निर्सन करेगी, यह आशा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्त में मैं अपने उन सभी मित्रों का आभार स्वीकार करता हूं; जिन्होंने इसको लिखने में मेरी सहायता की है। जैन सिद्धान्त भवन, आरा; भाण्डारकर प्राच्य संशोधन मंदिर पूना एवं प्रयाग विश्वविद्यालय से आवश्यक ग्रन्थों को क्रमशः श्री पं० नेमिचन्द्र जा शास्त्री, प्रो० परशुराम कृष्ण गोडे, और प्रो० रामसिंह जी तोमर ने भेजकर मुझे अनुग्रहीत किया है। श्रावस्ती से उपलब्ध मूर्तियों के चित्र प्रान्तीय संग्रहालय के अध्यक्ष श्री मनमोहनजी नागर की कृपा से प्राप्त हुए हैं। इस कृपा के लिये मैं उनका आभार मानता हूँ। श्रावस्ती क्षेत्र की उद्धारक समिति एवं बहराइच के जैन बन्धुओं को भी मैं भुला नहीं सकता। उनके निमित्त से इसकी रचना हुई और उनकी दानशीलता से ही यह प्रकाश में आ रही है। अतएव वे मेरे धन्यवाद के पात्र हैं। मेरे मित्र श्रीयुत कृष्णदत्तजी बाजपेयी, एम० ए०, अध्यक्ष पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा ने न केवल इसकी भूमिका लिखकर मुझे कृतार्थ किया है, बल्कि अपने सुझावों द्वारा भी मुझे उपकृत किया है।

यह पुस्तक यदि पाठकों का कुछ उपकार कर सकी, तो मैं अपना श्रम सफल हुआ मानूँगा।

अलीगंज, (एटा)
श्री वीर शासन जयन्ती;
३०-८-१९५०

विनीत—

कामताप्रसाद जैन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

❀ ॐ ❀

श्रावस्ती और उसके नरेश सुहलदेव।

(१)

जैन–शासन !

"श्रीमत्परमगम्भीर स्याद्वादामोघलाञ्छनम् ।
जीयात् त्रैलोक्यनाथस्य शासनं जिनशासनम् ॥"

जगती क्रम प्रकृति के नियमित शासन का एक विचित्र खेल है। प्रकृति का प्रत्येक कार्य अनुशासन की अवज्ञा करके नहीं चलता—प्रत्येक लौकिक कार्य संतुलित नियन्त्रण के परिणामाधीन है। तब क्या मानव उच्छृङ्खल रहकर सफल जीवन बिता सकता है? कदापि नहीं! पतवारहीन नाविक अपनी नौका को कैसे इच्छित स्थान पर ले जा सकता है? वस्तुतः मानव के लिये विवेक-धर्म का अनुशासन आवश्यक है। मनन करके हेय और उपादेय को त्यागने एवं ग्रहण करने की क्षमता के कारण ही तो व्यक्ति मानव कहलाया है! मानव क्या ग्रहण करे और क्या त्यागे? इस प्रश्न का सीधा-सा उत्तर यही है कि मानव अपनी मानवीयता को अपनाये और अज्ञान जन्य पर पदार्थों का मोह त्यागे। यही मानव का धर्म है। प्रत्येक वस्तु का स्वभाव उसका धर्म होता है। मानव जीवात्मा और शरीरपिंड के संयुक्तरूप में श्रेष्ठगति का जीव है। उसे याद रखना है कि उसकी आत्मा ही शाश्वत है—अमर है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुखशान्ति का रत्नागार है। शरीर पुद्गल परमाणुओं का वना हुआ है, इसलिये नाशवान है। शरीर के मोह में मानव को इन्द्रिय वासना का दास नहीं वनना है। उसे विवेकशील होकर मानव जीवन को सफल वनाना है, जिससे वह अपने आत्मधर्म-निजस्वभाव—ब्रह्मरूप को प्राप्त कर सके! जिनेन्द्र भगवान् ने इस सत्य का निरूपण किया; इसलिये उनकी धर्म-चक्र-प्रवर्तना "जैन शासन" के नाम से प्रख्यात् हुई!

निस्सन्देह 'जैन शासन' वस्तुस्वभाव का प्रगट रूप है। उसका आधार अहिंसा है और अनेकान्त-धर्मांङ्कित स्याद्वाद सिद्धान्त उसका लाञ्छन है। त्रैलोक्यनाथ जिनेन्द्र ने उसे प्रतिपादा है—उन जिनेन्द्र ने, जो अपने श्रम से पूर्ण-पुरुष बने थे, नर से नारायण हुये थे; राग और द्वेष को जिन्होंने जीत लिया था। जिनेन्द्र वह जो आत्मविजयी हुये—सर्वज्ञ और सर्वदर्शी वे नरपुङ्गव विश्वगुरू वने थे। उनका शासन सदा ही एक विज्ञान के रूप में चमकता आया है। जैन शासन-रसी लोग सच्चे विज्ञानवादी रहे हैं। उन्होंने लोक के चराचर पदार्थों में अपने जैसे जाज्वल्यमान आत्मा के दर्शन किये हैं और सब ही जीवों को अपना भाई माना है। जैन शासन में सब ही जीव बराबर हैं और सबको समान रूप में जीवित रहने देना ही परम धर्म माना गया है। जैन शासन में इस वात का भी ध्यान रक्खा गया है कि मानव अपने अल्पज्ञान और सीमित मानसिक विकास के कारण भ्रान्ति में पड़कर लड़ने झगड़ने न लगे। इसलिये ही वह स्याद्वाद मुद्राङ्कित है। स्याद्वाद सत्य के अनेक रूपों को स्पष्ट करने के लिये अचूक सिद्धांत है। वस्तु में अनेक गुण हैं—एक व्यक्ति के अनेक रूप हैं। इन्द्रियों के वन्धन में पड़ा हुआ मानव उन सबकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्याख्या एक साथ नहीं कर सकता। अतएव उन विविध रूपों को विशेष दृष्टिकोण से समझ लेने का नाम स्याद्वाद है। इस सिद्धान्त के द्वारा मानव को विशाल दृष्टि मिलती है, जिससे उसके हृदय में समन्वय और सहनशीलता की ज्योति जगती है और वह सर्व क्षेत्रों में सत्य के दर्शन करता है—सत्य के रूप को वह प्रगट जो कर देता है। तब मानव साम्प्रदायिक संकीर्णता में फँसकर लड़ता झगड़ता नहीं।

इस प्रकार जैन शासन अहिंसा और अनेकान्त सिद्धान्तों के आधार पर चलता है। प्राचीन भारत में जैन शासन का जयनाद हुआ था—'जैनं जयतु शासनं' सूत्र मूर्तिमान हो भारत में चमका था। भगवान् महावीर के पूर्वजों का राज्य एक गणराज्य था और उसमें जैन शासन का प्रकाश अपना कार्य करता था। तब लौकिक धर्म को आत्मधर्म की सिद्धि के लिये एक साधन मात्र माना गया था। 'व्यक्ति अपने में अहिंसा और अनेकान्त धर्मभाव को जगावे।' इस सत्य को तब हर कोई मानता था। निस्सन्देह ऐसा विवेकशील व्यक्ति ही कुल-धर्म, जातिधर्म, ग्रामधर्म, नगरधर्म और राष्ट्र धर्म का ठीक-ठीक पालन करता है। आज हमारा भारत एक स्वाधीन गण-राज्य के रूप में परिणत हुआ है। प्रत्येक भारतीय को इसका गर्व है। जैनों को गर्व है और बड़ा हर्ष भी! हर्ष इसलिये कि उनकी गणराज्य-प्रणाली को भारत-संविधान में अपनाया गया है। मानव ही नहीं, जीवमात्र की समानता और सम-अधिकारों का संविधान बनता तो और भी अच्छा था। भारत का संविधान अहिंसा, समता और सहिष्णुभाव को आगे रख कर हमें सच्चा नागरिक बनाता है। वह एक जैन के रूप में ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किसी सर्वशक्तिमान् ईश्वर की सत्ता और दासता को स्वीकार नहीं करता; अपितु प्रत्येक मानव को मानसिक, वाचिक एवं कायिक स्वाधीनता प्रदान करता है। केवल शर्त यह है कि मानव स्वयं विवेकमय अहिंसक जीवन बिताये और अपने साथियों को सफल जीवन विताने में सहायता दे। यही जैन शासन है। उसमें समृद्धि निहित है—ज्ञान की अविरल धारा छलछलाती है।

सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार, नन्दवर्द्धन, चन्द्रगुप्त, अशोक और सम्प्रति के राजत्व में जैनशासन का विकास हुआ। सारे लोक में अहिंसा की विजय-वैजयन्ती फहराई। देश में दूध की नदियाँ वहीं! सुख समृद्धि के वाहुल्य में 'सत्यं-शिवं-सुन्दरं' वाक्य मूर्तमान हो भव्य मन्दिरों और दिव्य मूर्तियों में जीवित हो उठा! आज हमें इस अहिंसामय शासन की आवश्यकता है। उसका विकसित अभिनय श्रावस्ती के प्राचीन-प्रांगण में भी हुआ था। प्रस्तुत निबन्ध में हमें श्रावस्ती में उसके विकसित रूप का दिग्दर्शन कराना अभीष्ट है! जैन शासन श्रावस्ती में चमका था—अहिंसा संस्कृति श्रावस्ती में मूर्तिमान हुई थी! श्रावस्ती ने भी विशाल अहिंसा-भावना को मूर्तिमान् बनाया था। आइये श्रावस्ती के दर्शन करें।

———

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(२)

श्रावस्ती की झाँकी !

"इह भरहे अत्थि सावत्थिपुरि।
जहिं रमइं णिरारिउ चिरु खयरि॥"

—मुनि कनकामर

आइये पाठक, आज से ढाई-तीन हज़ार वर्षों पहले के भारत में चलिये और तब के स्वाधीन भारत के अभिज्ञान और वैभवका अवलोकन कीजिये। आइये, इस समय केवल प्राचीन भारत के एक प्रधान नगर श्रावस्ती का दिग्दर्शन करें। बानगी के चावलों से उनकी श्रेष्ठता का पता चलता ही है। श्रावस्ती का दर्शन तत्कालीन भारत का परिचय कराये, इसमें संशय ही क्या ?

मुनि कनकामर कहते हैं* कि प्राचीन समय में इस भरतक्षेत्र में श्रावस्ती नाम का एक पुर था, जहाँ चिरंतन खेचर (विद्याधर) रमणियाँ आ-आकर क्रीड़ा करती थीं। इतना सुन्दर था वह नगर कि विशिष्ट विद्याओं से अलंकृत विद्याधर वंश के मानव भी वहां आकर आनन्दकेलि करते थे। इन विद्याधर-मानवों का मूलस्थान अथवा आवास विजयार्द्ध पर्वत था। वहाँ से आकर यह लोग भारत में आबाद हो गये थे। इनका इन्द्र नाम का एक राजा बड़ा ही बलवान और पराक्रमी हुआ था। उसने सारी पृथ्वी को वश में किया था और देवलोक के सदृश सभी रचना

* करकंड चरिउ, १०—६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यहाँ की थी। इसी कारण विद्याधरों में नागकुमार, सुपर्ण-कुमार, राक्षस कुमार आदि नामधारी राजवंश भी हो गये थे। इनमें से बहुत-से लोग हिम-प्रलयके संकट से मुक्त होने के लिये विजयार्द्ध पर्वत को छोड़कर धीरे धीरे सारे संसार में फैल गये। भारतवर्ष में भी वह आए—उत्तरापथ में भी रहे और दक्षिणापथ में भी। उत्तरापथ में उनका पुनर्वास नेपाल और विहार (प्राचीन मगध) में हुआ था। कौशाम्बी के पास भी उनका एक राज्य था। इस दशा में मुनि कनकामर ठीक ही लिखते हैं कि श्रावस्ती में विद्याधर वंश की रमणीयाँ क्रीड़ा करने आया करती थीं।

जीवन में जीवट और स्फूर्ति लाने के लिये मनो-विनोद की सहायता लेना मानव प्रकृति का स्वभाव है। जीवन के दैनिक श्रम और उथल-पुथल की तलखी को भुला देने के लिये मानव हंस-खेल कर जी वहलाता है और नूतन जीवन लेकर आगे बढ़ता है। प्रकृति के सुन्दर स्थल उसको नव-जीवन, नव उल्लास और नवनीत आनन्द प्रदान करने में अनायास कारण रहे हैं। श्रावस्ती ऐसा ही सुन्दर स्थल था। हिमालय की पृष्ठ भूमि के सन्निकट वह जो रहा!

श्रावस्ती की स्थापना कब और कैसे हुई? इस पर विभिन्न मत हैं। उत्तर कोशल देश के नगरों में श्रावस्ती और साकेत प्रख्यात थे। एक समय श्रावस्ती कोशल की राजधानी भी रही ‡। यह तब हुआ होगा जब कोशल नरेश साकेत छोड़ने के लिये बाध्य हुए। कोशल और काशी के राजाओं में प्रति-स्पर्द्धा चलती थी। बहुत पुरानी बात है कि एक बार कोशल-नरेश को काशिराज ने परास्त किया। उनका पुत्र चत्त कोशल

‡ इंडियन हिस्टॉरीकल क्वारटर्ली, भा० १ पृष्ठ १६२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छोड़कर भाग गया—वह तक्षशिला गया। और विद्या अध्ययन करके निपुण हो आया। काशीनरेश को उसने मोह लिया—काशी के राजकोष का पता उसने पाया और सारा खजाना लेकर वह श्रावस्ती को भाग आया। श्रावस्ती में उसने सुदृढ़ कोटप्राचीर बना कर नगर को सुरक्षित कर दिया। श्रावस्ती कोशल की राजधानी हो गई।×

जैन मान्यता है कि प्रथम तीर्थङ्कर भगवान् ऋषभनाथ के समय में भारतवर्ष बावन देशों में विभक्त किया गया था। उनमें एक कोशल भी था÷। कोशल का उत्तरीय भाग, जहाँ श्रावस्ती अवस्थित थी, परवर्ती काल में 'कुणाल' अथवा 'कुलाल' नाम से प्रसिद्ध हुआ था। इस कुणाल देश में श्रावस्ती विद्यमान थी।()

ब्राह्मणों के 'विष्णुपुराण' (अ० २ अंश ४) में लिखा है कि इक्ष्वाकु के पुत्र विवक्षु के आठवें वंशधर श्रावस्तनरेश ने अपने नाम से श्रावस्ती को बसाया था। 'मत्स्य पुराण' (२१। ३०) में भी उल्लेख है कि काकुत्स्थ वंश के श्रावस्त नरेश ने गौड़ देश में श्रावस्त नगर बसाया था। किन्तु 'लिङ्ग पुराण' में श्रावस्त के पुत्र वंशक को श्रावस्ती का निर्माता लिखा है।❀ इन उल्लेखों से एक बात स्पष्ट है कि श्रावस्ती की स्थापना में इक्ष्वाकुवंश के नरेशों का हाथ था। प्रथम तीर्थङ्कर ऋषभ ने जनता को इक्षु रस का उपयोग करना बताया था, इस कारण

× जातक (Jatakas, III, 76-78)

÷ महापुराण।

() 'अस्मिन्भारतेवर्षं कुणाल विषयेपुरं 'श्रावस्ती'—उत्तरपुराण ७।९१—"कुलालाख्यजनान्ते च श्रावस्तीनगरी परा।"—कथा कोष, पृ० १९९।

❀ हिन्दी विश्वकोष, भा० ६ पृ० ४३८।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वह इक्ष्वाकु कहलाये और उनके वंशज इक्ष्वाक-नरेश! इक्ष्वाक नरेशों का आश्रय पाकर श्रावस्ती समृद्धिशाली हुई—अतएव वे ही उसके निर्माता कहे गये तो आश्चर्य क्या?

बौद्ध ग्रन्थ तो श्रावस्ती की महानता का बखान पद-पद पर करते हैं। कहते हैं कि जिस क्षेत्र में सावत्थ (श्रावस्त) नामक साधु महात्मा रहते थे, वही क्षेत्र उनके नाम और आवास के कारण 'श्रावस्ती' (प्राकृत 'सावत्थी') कहलाया। × 'पपञ्च-सूदनी टीका' में लिखा है कि श्रावस्ती-क्षेत्र में मानव की आवश्यकताओं को पूर्ण करने वाली सब ही वस्तुयें सुलभ थीं, अतएव वह सव्व+अत्थि=साव्वत्थि नामसे प्रसिद्ध हुई। कतिपय वणिकों से किसी ने यह पूँछा कि उस नगर में क्या-क्या मिलता है? उत्तर में उन्होंने कहा कि 'वहां सब-कुछ मिलता है।' (सव्वम् अत्थि) इसी पर वह नगर सावत्थि (श्रावस्ति) नामसे प्रचलित हो गया।÷ जो हो, हो सकता है कि पहले श्रावस्ती एक छोटा-सा हाट हिमालय की तलहटी में रहने वाले अधिवासियों के लिये रहा हो। धीरे-धीरे सन्त-महात्माओं के आवास और इक्ष्वाक् वंशी राजाओं के सम्पर्क में आकर वह एक बड़ा नगर बन गया हो—ऐसा परिपूर्ण हाट बाजार वहां का हुआ कि वह सावत्थी कहलाने लगा। संस्कृत भाषा में सावत्थी का रूपान्तर श्रावस्ती नाम से किया गया। श्रावस्ती के अवतरण की यह कथा है। प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनि ने भी उसका उल्लेख किया है+। 'रामायण' और 'महाभारत' काल में भी वह प्रसिद्ध नगर था। जैन ग्रन्थ

× इण्डियन हिस्टॉरीकल कारटर्ली, भा० १ पृ० १६२।

÷ प्रपञ्चसूदनी, भाग १ पृ० ५९–६०।

+ अष्टाध्यायी (४।२।९७)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बताते हैं कि कयंगला नाम की नगरी के पास सावत्थी अवस्थित थी।[]

कहते हैं कि 'त्रिकाण्डशेष' नामक पुस्तक में श्रावस्ती का अपर नाम धर्मपत्तन भी मिलता है। जैन शास्त्रों में तो श्रावस्ती की गणना तीर्थों में ही की गई है। वहां बड़े बड़े मुनियों के आश्रम थे और कई साधु-महात्माओं ने वहाँ कैवल्य-विभूति को प्राप्त किया था। जैन शास्त्रों में उसका दूसरा नाम कुणालानयरी भी मिलता है और वह भारत की दस प्रमुख राजधानियों में से एक थी॥। साकेत से सावत्थि उत्तर की ओर छै योजन की दूरी पर अचिरावती नामक नदी के किनारे पर अवस्थित थी। × भ० महावीर के केवलज्ञानी होने की पुण्यमय घटना से १३ तेरह वर्ष पहले कुणाला देश में एक बड़ी बाढ़ आने के कारण श्रावस्ती के जन-धन की बहुत हानि हुई थी÷। किन्तु शीघ्र ही जनता ने मिल-जुलकर अपने श्रम से इस नगर को पुनः समृद्धिशाली बना लिया।

श्रावस्ती के वैभव और विद्या की प्रसिद्धि दूर-दूर के देशों में फैली हुई थी। दक्षिण भारत के मदुरा नगर में एक बार श्री गुप्ताचार्य अपने संघ सहित विराजमान थे। मनोवेग विद्याधर उनकी बन्दना करने आया। कुछ दिन रहकर उसने श्रावस्ती नगरी जाने की इच्छा की। श्री गुप्ताचार्य ने उसके

[] "तीसेणं कयंगलाए नयरीए अदूर सामते सावत्थी णाम नयरी होत्था।"—विवाह प्रज्ञप्ति पृ० २६०।

॥ लाइफ इन ऐन्शियेंट इण्डिया, पृ० ३३२

× बुद्धिस्ट इण्डिया, पृ० ४०

÷ लाइफ इन ऐन्शियेंट इण्डिया, पृ० २५६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भाव को सराहा और कहा कि 'श्रावस्ती नगरी रम्य और महान् है। तुम अवश्य वहां जाओ'।‡

श्रावस्ती में बड़े बड़े सेठ साहूकार और व्यापारी रहते थे। उन्होंने नयनाभिराम प्रासादों, देवमन्दिरों और उपवनों से श्रावस्ती के सौन्दर्य को द्विगुणित कर दिया था। दूर-दूर देशों से अच्छी-अच्छी अद्भुत वस्तुओं को लाकर उन्होंने श्रावस्ती को सजाया था। वे वणिक बड़े ही साहसी और सत्यनिष्ठ थे—उनकी साख दूर-दूर के देशों में थी। अहिंसाधर्म का वे ठीक-ठीक पालन करते थे—जनता को खाद्य पदार्थों के अभाव का दुःख अकाल में भी नहीं होने देते थे। वे निरन्तर आहारदान जो दिया करते थे। जैन सेठ कामदेव एक बड़े व्यापारी और दानशील धर्मात्मा थे। विदेह से श्रावस्ती का बहुत व्यापार चलता था। सेठ कामदेव की गाड़ियाँ नाज भर-भर कर वहाँ जाया करतीं थीं॥। यही नहीं, श्रावस्ती के लोग जहाजों में बैठकर सुवर्णभूमि (बर्मा) आदि विदेशों को भी व्यापार करने जाया करते थे×। आज भारत पुनः स्वाधीन हुआ है। अब हमारे व्यापारी भाई श्रावस्ती के पुराने व्यापारियों का अनुकरण करें, यहाँ उपज बढ़ायें, कलाकौशल की वृद्धि करें और दुनियाँ के हाट-बाजार अपने उत्पादन की श्रेष्ठ वस्तुओं से पाट दें। तब उनका देश महान् होगा और वे गौरव अनुभव करेंगे।

---

‡ हरिषेण कथाकोष, पृ० ८—"श्रावस्ती नगरीमहम्"—'श्रावस्ती नगरी रम्या।"

॥ हरिवंश पुराण सर्ग २८ श्लो० १९–२०।

× इण्डियन हिस्टॉरीकल क्वारटर्ली, भा० १ पृष्ठ १६४।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रावस्ती के वैभव और समृद्धि के गीत लोगों ने दूर-दूर तक गाये और हजारों वर्षों तक गाते रहे। वह धर्म स्थान जो बन गया था। विदेशों के यात्री भी श्रावस्ती के दर्शन करने आये। उनमें से चीन देश के दो यात्री (१) फाह्यान और (२) हुएनसांग प्रसिद्ध थे। फाह्यान ईस्वी चौथी शताब्दि के अन्तिम भाग में भारत आया और श्रावस्ती की प्राचीन समृद्धि-वार्ता उसके कानों में पड़ी। उसने सोचा कि चलकर देखें कि अब श्रावस्ती का क्या रूप है? किन्तु सब के दिन एक से नहीं रहते! श्रावस्ती का रूप यौवन जरा की झुर्रियों में लोल-लोथड़े बना हुआ था। बड़े-बड़े खेड़े श्रावस्ती के प्राचीन वैभव को अपने भीतर सुरक्षित रक्खे मानो प्रहरी का ही काम कर रहे थे। फाह्यान ने देखा श्रावस्ती दो सौ घरों का एक छोटा-सा नगर रह गया है। बौद्ध और जैनों के विहार एवं स्तूप वहाँ शेष थे। साम्प्रदायिक विद्वेष में वह कर ब्राह्मणों ने उनको नष्ट करना चाहा, परन्तु वे उनको पूर्णतः नष्ट न कर सके। फाह्यान ने यह सब कुछ सुना और देखा। देख भाल कर वह आगे बढ़ गया।*

दूसरा चीनी यात्री हुएनसाँग था। वह ईस्वी सातवीं शताब्दि में भारत आया और श्रावस्ती देखने गया था। उसने लिखा था कि श्रावस्ती राज्य का क्षेत्रफल ६००० ली है। मुख्य-नगर (श्रावस्ती) उजाड़ और जनशून्य हो रहा है। 'उजड़े हुये राजभवन का क्षेत्रफल २० ली के लगभग था। नगर में थोड़े से निवासी अवशिष्ट थे। अन्नादि की उपज अच्छी होती थी। प्रकृति उत्तम और स्वभावानुकूल थी। मनुष्य शुद्ध आचरण वाले और धर्मिष्ठ थे। कई सौ बौद्ध संघाराम उजड़े हुए

---

* Legge, Travels of Fa-Hien, pp. 55—66.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पड़े थे। बहुत थोड़े भिक्षु वहाँ अध्ययन करते थे। अन्य सम्प्रदायों के देवमन्दिर लगभग १०० उस समय भी विद्यमान थे, नगर के दक्षिण में ५ या ६ ली पर जेतवन था तथा वहाँ कई स्तूप भी थे। श्रावस्ती से ५०० ली दक्षिणपूर्व चल कर हुएनसाँग कपिलवस्तु पहुँचा था। विशाखा (साकेत ×) से पूर्वोत्तर ५०० ली पर श्रावस्ती थी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मध्यकाल के प्रारम्भ से श्रावस्ती का अवसान प्रारम्भ हो गया था। श्रावस्ती अपने यौवन-सौन्दर्य की याद कर करके गहरी स्वासें मध्यकाल में लेती रही। जैन गुरुओं और श्रावकों ने उसको अपना कर एक वार सान्त्वना देने का प्रयास किया। मुसलमान आक्रमण-कारियों से उसको क्षत-विक्षत न होने देने के लिये उन्होंने अपने प्राणों की बाजी लगा दी। श्रावस्ती कुछ दिन और जीवित रही। किन्तु बुढ़ापे के पश्चात् अवसान होना प्रकृति का नियम है। श्रावस्ती महाकाल के कोप से बच न सकी। उसके अवशेष आज भी उसकी समृद्धि-विभूति की याद दिला रहे हैं। और भारत के गौरवशाली वैभव की भी।

× हुएनसांग का भारत भ्रमण पृ० २६२—२७८।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रावस्ती का अवशेष—सहेठ महेठ।

"अत्थि इहेव दाहिणड्ढ भारहेवासे अगणिज्जगुणगणविसए कुणालाविसए सावत्थी नामनयरी संपइकाले महेठि त्ति रूढ़ा वट्टइ।" —जिनप्रभसूरि।

चौदहवीं शताब्दि में श्री जिनप्रभूसूरि ने श्रावस्ती के दर्शन किये थे। उस समय गहन वनों से घिरी हुई श्रावस्ती महेठि नाम से रूढ़ हो गई थी। लोगों ने उसका नाम महेठि रख दिया था। यह नाम उन्होंने क्यों रक्खा, इसका ठीक पता नहीं चलता। तो भी, यह स्पष्ट है कि श्रावस्ती का वह भाग जहाँ जैन मंदिर और जैन स्तूप आदि अवस्थित थे महेठि कहलाता था।

एक अँग्रेज विद्वान का अनुमान है कि यह पुरी 'श्रावस्ती महती' कहलाई होगी। श्रावस्ती बिगड़ कर 'सेत' और महती 'महेठ' हो गई।* एक भारतीय विद्वान् इस नामकी रूढ़ता महात्मा बुद्ध के शिष्य और श्रावस्ती के रईस सेठ सुदत्त की उदारता से सम्बद्ध करते हैं। वह लिखते हैं कि "उदारता के कारण उस (सेठ) की उपाधि महत् पड़ गई थी। इसी से बौद्ध ग्रन्थों में सुदत्त का सेट्ठि महत् के नाम से ही उल्लेख

---

* *W. HOEY*, Set Mahet, Journ. As. Soc. Bengal, Vol. LXI., Pt I. Extra No., 1892, p. 4.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हुआ है। फिर श्रावस्ती के सहेट को सुदत्त के इसी महत या महेट के साथ सम्बन्धित कर कहने लगे। इस प्रकार श्रावस्ती का नाम सहेट-महेट पड़ गया।"× किन्तु यह निष्कर्ष कुछ अप्राकृतिक-सा भासता है। बौद्ध ग्रन्थों में सेठ को महत् कहा है, श्रावस्ती को तो नहीं कहा। यह तो खींच-तान कर हाथ पर छोटा दस्ताना चढ़ा लेना है।

ज्ञात ऐसा होता है कि श्रावस्ती की स्थिति को प्रगट करने के लिये उसके साथ 'महेठि' शब्द रूढ़ हो गया था; क्योंकि श्रावस्ती अचिरावती नदी के निकट—उसके तट पर अवस्थित थी। आज गोंडा जिला के सहेठ-महेठ ग्राम के खंडहरों को प्राचीन श्रावस्ती पहिचाना गया है। उसका उत्तरी भाग 'महेट' कहलाता है। इस महेट के पश्चिमीय भाग से सटी हुई नदी बह रही है; क्योंकि आज भी सहेट-महेट के खंडहर राप्ती नदी के तट पर ही पड़े हुए हैं। बौद्ध ग्रन्थ "अट्ठ कथा" में एक प्रसंग में अङ्ग ही जन पद के एक उत्तरीय भाग को मही (नदी) के पानी के कारण उत्तराप कहा जाता लिखा है।* अतः यह स्पष्ट है कि उस समय नदियों की अपेक्षा देशों और नगरों की स्थिति प्रकाशित करने का प्रचलन था। आज भी लोग नगरों का उल्लेख इस प्रकार ही करते हैं—जैसे पटियाली-गंग (Patiali on Ganges) करते हैं। श्रावस्ती चूँकि अचिरावती (नदी) के किनारे पर अवस्थित थी; अतएव उसकी यह स्थिति स्पष्ट करने के लिये उसके साथ 'महेठि' शब्द रूढ़ हो गया। 'मही' शब्द से नदी अभिप्रेत है और 'अट्ठि' शब्द संस्कृत भाषा के शब्द 'अस्ति' का

× सरस्वती' भाग ३४ पृष्ठ ३४।

* मज्झिम निकाय, (सारनाथ हिन्दी संस्करण) पृ० २१४ फुटनोट।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपभ्रष्ट रूप प्रतीत होता है। इस प्रकार 'मही+अट्ठि'= महेट्ठि शब्द बन जाता है। उपरान्त श्रावस्ती का यह पश्चिमीय भाग, जिसमें केवल जैनों के धर्मागार विद्यमान थे, उसके अवशेष भाग से पृथक घोषित करने के लिये 'महेठि' नाम से रूढ़ हो गया। इसलिये ही जिन प्रभसूरि ने उसे 'महेठि' लिखा है।

बौद्धों के पाली ग्रन्थों में श्रावस्ती का उल्लेख "सावट्ठि" रूप में हुआ है, जबकि जैनों की अर्द्ध मागधी भाषा में वह 'सावत्थि'—अथवा 'सावत्थी' लिखी गई है। 'सावट्ठि' का ही अपभ्रष्ट रूप 'सहेठ' है। वह 'सँट-मँट' (उल्टा-पल्टा) के अर्थ को व्यक्त नहीं करता।× सहेट महेट के खंडहरों में जहां पर 'जेतवन' की स्थिति आंकी गई है, वहाँ के उस क्षेत्र को लोग 'सेत' कहते थे। पटवारी की खतौनी में भी उसका नाम 'सेत' दर्ज था।* हो सकता है कि जेतवन की अपेक्षा 'सेत' नाम रूढ़ हुआ हो, परंतु वह उस क्षेत्र का ही द्योतक है जहाँ जेतवन अवस्थित बताया गया है। 'सहेट' नाम तो श्रावस्ती के पाली प्राकृत भाषा के 'सावट्ठि' नाम का ही अपभ्रष्ट रूपान्तर प्रतीत होता है। इस प्रकार श्रावस्ती अपने रूप और वैभव को खो बैठने के उपरान्त अपने नाम से भी हाथ धो बैठी! वह समृद्धिशाली श्रावस्ती थी कहाँ? जनता ने उस पर बड़ी दया की जो उसके उजड़े हुये रूप का नया नाम रूढ़ कर दिया! श्रावस्ती सहेठि-महेठि कहलाने लगी!

× जेनरल कनिंघम ने भी पाली नाम का अपभ्रष्ट रूप 'सहेठ' लिखा है। परन्तु उनका पाली के नाम को 'सेवेट' (sewet) अथवा 'सावेट' (sawet) लिखना ठीक नहीं है। शुद्धरूप (सावट्ठि) भापता है। Cunningham Ancient Geog. of India, p. 473.

* *HOEY*—Jour. As. Soc. Bengal, LXI. Pt. I. 1892. p. 4.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'गोंडा जिले का सहेट-महेठ स्थान ही प्राचीन श्रावस्ती है'—यह बात सहेट-महेठ से उपलब्ध पुरातत्व की साक्षी से प्रमाणित है। जनरल कनिंघम को सहेट-महेठ के खंडहरों में सबसे पहले एक विशालकाय बुद्ध-मूर्ति मिली। उस पर अङ्कित लेख में स्पष्ट रूपेण 'श्रावस्ती' लिखा हुआ था।× उपरान्त वहाँ के खंडहरों की जो खुदाई हुई, उसमें भी बहुत-सी जैन और बौद्ध मूर्तियाँ, सिक्के आदि वस्तुयें मिलीं; जिनके आधार से यह निश्चित् हो गया कि सहेठ-महेठ ही श्रावस्ती का वर्तमान उजड़ा हुआ रूप है। प्राचीन श्रावस्ती यहाँ पर ही विद्यमान थी। आइये सहेठ-महेठ के बीहड़ वनों और अव-शेषों का अवलोकन कीजिये।

सहेट-महेट अकौना से पांच मील और बलरामपुर से बारह मील की दूरी पर अवस्थित है—बहराइच और गोंडा से भी उसे इतनी ही दूर समझिये। यह अवशेष अर्द्ध चन्द्राकार स्थिति में एक मील चौड़े और सवा तीन मील लम्बे क्षेत्र में बिखरे पड़े हैं।* श्रावस्ती के नगर कोट की दीवाल के निशान अब भी बाकी हैं! सन् १८८४ ई० में बलराम पुर की श्रीमती महारानी जी ने इसकी खुदाई के लिये तत्कालीन अंग्रेज सरकार को पाँच हजार रुपये दिये थे। उस रुपये से सहेट-महेट के खेड़ों की खुदाई का काम ता० १५ दिसम्बर सन् १८८४ ई० को प्रारम्भ किया गया था। यह खनन-कार्य श्री डबल्यू० होय० (W. Hoey) नामक अंग्रेज राजकर्मचारी की

× "....*Sahet-Mahet*, in which I discovered a colossal statue of Buddha with an inscription containing the name of Shravasti itself."—Cunningham The Ancient Geog. of India p. 469.

* Cunningham, *loc-cit.*, pp. 469—470.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

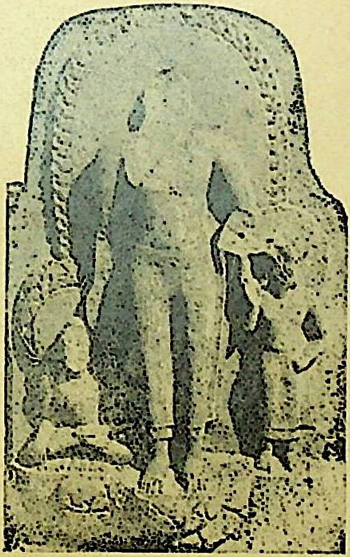

[महेट महेट से प्राप्त]

महात्मा गौतम बुद्ध की खण्डित मूर्ति

जिस पर अङ्कित ६टी अथवा ७वीं शताब्दी के लेख में श्रावस्ती का उल्लेख है

(प्रान्तीय संग्रहालय लखनऊ के सौजन्य से)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अध्यक्षता में किया गया था। उन्होंने अपनी खुदाई का विवरण प्रकाशित किया था।× उसी के आधार से पाठकों को सहेठ - महेठि का परिचय यहाँ कराया जा रहा है।

श्री होय ने जिस समय सहेठ महेठि के भूगर्भ का मुंह खोलने का श्रीगणेश किया, उस समय सब से पहले उनको गहन वन से जूझना पड़ा। उस वन को साफ कराने में ही समय और धन का बहुभाग व्यय हो गया। इसका परिणाम यह हुआ कि महेठि वाले क्षेत्र का वह ठीक २ सर्वे कर सके। उसमें उनको नगर के द्वारों और प्रमुख हाट-बाजार की स्थिति का पता चल गया। इस भाग में उनको जैन एवं हिन्दू इमारतों के अवशेष मिले। उन्होंने सोमनाथ के खेड़े को भी खुदवाया।+ बघेलवारी और कंधवारी खेड़ों की भी उन्होंने खुदाई कराई। पनियाझार खेड़े की भी खोज की गई, किन्तु ओरझार के बड़े खेड़े को अछूता छोड़ दिया। इसलिये दरवाजे की बाहरवाली इमारतों को भी उन्होंने देखा, जहाँ उनको अनेक मुद्रायें (seals) और अन्य वस्तुयें मिलीं। श्रावस्ती के सहेट भाग के अवशेषों को भी होय सा० ने खूब ही खोज-बीन की थी, जिसमें उन्होंने बौद्धों के प्राचीन स्थानों जैसे जेतवन आदि का ठीक पता लगा लिया था। अपनी रिपोर्ट में उन्होंने इनका वर्णन विस्तार पूर्वक मानचित्रों सहित किया है।

× Jour. As. Soc. Bengal, Vol. LXI., Pt. I. 1892 Extra Number.

+ "I have also found some buildings, both Jain and Hindu, in the western quarter, and have opened up the mound of Somnath."—Hoy, *Ibid*, p. 1.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महेठि के पश्चिमीय भाग में जैन अवशेष रहे हैं; जो इमलिया दरवाजे के निकट विद्यमान हैं। यहाँ की मुख्य इमारत वह है जो सोमनाथ अथवा सोभनाथ के मंदिर के अवशेष पर बनी हुई है। इस क्षत-विक्षत मंदिर की पूजा अब भी जैनी करते हैं। यह तृतीय जैन तीर्थङ्कर संभवनाथ जी का मंदिर है। अब तो मंदिर का शिखर भाग ही शेष है। जैनी वहाँ मेला रचाते हैं और अपने बाल-बच्चों का मुंडन संस्कार कराने भी वहाँ ही जाते हैं। जैनों के पतन के पश्चात् भ० संभवनाथ को लोग शोभनाथ और फिर सोमनाथ कहने लगे; किन्तु मूलतः इस मंदिर के मूलनायक तीर्थंकर संभवनाथ थे। इस मंदिर के अवशेष की प्राचीनता में होय सा० को कोई शंका न थी।= सुना था कि जब यह मंदिर गिरा नहीं था तब इसमें चौबीसों तीर्थंकरों की मूर्तियां विराजमान थी। इसलिये ही उन्हों ने बड़ी सतर्कता से इसके मुख्य भाग को खुदवाया और उन्हें तीर्थङ्करों की सात मूर्तियां मिलीं; जिसमें संभवनाथ और सुमतिनाथ की भी मूर्तियां थीं।× एक मूर्ति पर सं० ११३३ का एक लेख भी उन्होंने पढ़ा था और अनुमान किया था कि इसी समय श्रावस्ती में जैनधर्म

= "The Jain quarters lay in the west of the city near the Imliya Darwaza............the ruins of the temple of Somnath or Sobhnath, which is still venerated though now seldom visited by Jains. The antiquity of this spot cannot be doubted"——Ibid, p. 55.

× "I have therefore opened the mound of Somnath with great care. I have been so fortunate as to recover on this occasion images of seven several patriarchs here ....One of them bears a Sanskrit inscription recording that it was dedicated in Samvat 1133 by Sutan Pandit—Ibid, p. 56.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

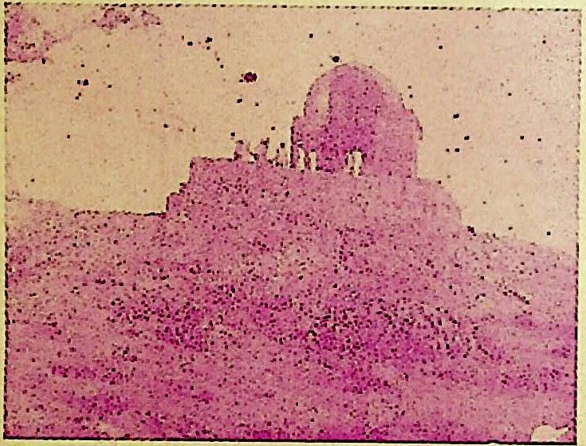

सहेठ महेठ में प्राचीन जैन मन्दिर का अवशेष

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री संभवनाथ जी की जन्म-भूमि

प्राचीन जैन मन्दिर, श्रावस्ती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का पुनरुत्थान हुआ था। इसी समय मुसलमानों द्वारा नष्टभृष्ट किये गये जैन मंदिरों और मूर्तियों की पुनर्स्थापना और प्रतिष्ठा की गई थी।=

श्री संभवनाथ जी के मंदिर के अतिरिक्त वहां ही पास में जैनों के दो मंदिर और भी थे। होय सा० ने उन दोनों की पूरी पूरी खुदाई की थी। उत्तरीय और मध्यवर्ती वेदियों में उनको जिन मूर्तियां भी मिलीं थीं। इन जैन मन्दिरों से सटे हुए एक प्राचीन हिन्दू मन्दिर को भी होय सा० ने ढूंढ निकाला था। उसके पास जो खेड़े थे, उनको वह बौद्ध विहार का अवशेष अनुमान करते थे। उन खेड़ों का खनन कार्य वह नहीं करा सके थे। स्वतंत्र भारत में यदि श्रावस्ती के शेष अवशेषों का खननकार्य किया जावे तो इतिहास पर नया प्रकाश पड़ने की संभावना है। क्या ही अच्छा हो बहरायच और गोंडा की नगरपालिका सभायें (Municipality) प्रयाग नगरपालिका सभा का अनुकरण करके अपने तत्वावधान में 'श्रावस्ती शोध संसद्' की स्थापना करें और उसके द्वारा सहेठ-महेठ की खुदाई करा के प्राचीन स्थानों का पुनरुद्धार करें। बहरा-यच की जनता ने एक 'श्री सुहलदेव मेमोरियल कमेटी' स्थापित की भी है। वह इस आवश्यक कार्य को हाथ में ले, तो अच्छा है।

श्री होय को यहां एक बौद्ध शिलालेख सं० ११७६ का मिला था जिससे पता चला है कि सूर्यवंशी राजा मानधाता के राजसचिव विद्याधर श्रीवास्तव (कायस्थ) ने एक बौद्ध विहार बनवाया था। वह शैव से बौद्ध हुये थे।❀

= Ibid, pp. 56-57 संभव है कि यह जैन स्तूपोंके अवशेष हैं।

❀ Ibid, pp. 57-58.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रावस्ती में श्रमण संस्कृति !

"There were two sects of Indian Philosophers: (1) Sarmanai, (2) Brachmanai. The Brachmans neither eat anything having life, nor drink wine ;......But those Indians who are called Semnoi go naked all their lives. These practise truth, make predictions about futurity and worship a kind of pyramid beneath which, they think, the bones of some divinity lie buried."

—McCrindle, Ancient India, p. 183

प्राचीन काल से भारत में दो विचारधारायें गंगा-यमुना की तरह बहती आई हैं। वे ब्राह्मण और श्रमण परम्परायें हैं। इन्हीं परम्पराओं के कारण यहां ब्राह्मण संस्कृति और श्रमण संस्कृति का भी उद्भव हुआ। ब्राह्मण संस्कृति जगत के कर्त्ताहर्त्ता ईश्वर की बात को लेकर प्रकृति शक्तियों की पूजा करने की प्रचारक रही है। उसने धर्मतत्व का निरूपण अलंकृत भाषा में किया। यजन-याजन करना ब्राह्मणों का मुख्य कर्तव्य था। वाह्य क्रियाकांड की पूर्ति में ही उन्होंने धर्माचार की इति समझी। समाज में ऊंचनीच का भूत भर कर वर्णाश्रमधर्म उनके निकट मुख्य वस्तु रही। यद्यपि वेदों में अहिंसा का विधान किया गया, परंतु धर्मयज्ञ के नाम पर वे पशुहिंसा से बिल्कुल अछूते नहीं रहे। नरमेध यज्ञ तक रचाये गये। इसके विपरीत श्रमणसंस्कृति पूर्णतः अहिंसा प्रधान रही।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रमण संस्कृतिका मुख्य ध्येय प्राणी मात्र को श्रमी और संयमी बनाकर स्वावलम्बी कर देना था। श्रमण परम्परा में एक सर्व शक्तिमान ईश्वर को कभी स्थान नहीं दिया गया, बल्कि जीवमात्र को कर्म करने और उसका फल भोगने के लिये स्वतंत्र घोषित किया गया था। श्रमण संस्कृति में मानव ही नहीं, प्राणी मात्र के साथ समता का व्यवहार किया गया था। समाज अहिंसक बनकर जीवमात्र का कल्याण करने के लिये लालायित रहा। उपनिषदों में परा-आत्मविद्या को वेदों के क्रियाकांड सम्बन्धो अपरा ज्ञान से श्रेष्ठता दी गई है। आत्म-ज्ञान के उपदेष्टा मुख्यतः क्षत्रिय वर्ग के राजर्षि रहे हैं। सभी जैन तीर्थङ्कर क्षत्रिय नर-रत्न थे। श्रमण परम्परा को महत्व शाली बनाने में इन तीर्थङ्करो का योग सर्वोपरि था। जैन श्रमणों के अतिरिक्त आजीवक, बौद्ध आदि मतवादी भी श्रमण परम्परा में उल्लेखनीय सम्प्रदाय थे। किन्तु प्रारंभ में श्रमण सम्प्रदायों के अन्तर्गत जैन श्रमण ही अग्रस्थान ग्रहण किये हुए थे। यूनानियों के आक्रमण के समय श्रमण परम्परा का प्रधिनिधित्व करने वाले जैन श्रमण थे। मेगस्थनीज ने श्रमणों का जो परिचय लिखा है उसमें उस यूनानी राजदूत ने उनको आजीवन दिगम्बर (नग्न) भेष में रहते हुये बताया है तथा यह भी लिखा है कि वे श्रमण सत्य का अभ्यास करते थे, भविष्य का फलाफल बताते थे और स्तूपों को पूजा करते थे। यह एक निश्चित मत है कि श्रमणों में जैन श्रमण दिगम्बर भेष में रहते आये हैं। उनमें बड़े २ ज्योतिषाचार्य भी होते आये हैं, जो भविष्यवाणियां किया करते थे। मथुरा का बोद्धस्तूप बौद्ध काल से भी पहले का है और वह इस बात का प्रमाण है कि जैनों में स्तूप-पूजा बहुत पहले से प्रचलित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

थी।* इस प्रकार मौर्यकाल के आदि में श्रमण—परम्परा का नेतृत्व जैन श्रमण कर रहे थे। नन्दवंश के राजाओं के गुरु और मंत्री भी जैन थे ×। मौर्य सम्राट् चंद्रगुप्त के गुरु श्रुतकेवली भद्रबाहु एक प्रसिद्ध जैन योगी थे। निस्सन्देह भ० महावीर के भक्त मगध, अंग, कलिंग, वत्स, सिंधु-सौवीर आदि जनपदों के शासक थे। श्रावस्ती नरेश भी तीर्थङ्कर महावीर के अनन्य भक्त थे।=

श्रावस्ती न केवल श्रमण संस्कृतिका केन्द्र स्थान था, प्रत्युत वहां पर ब्राह्मण परिब्राजकों के भी आश्रम थे। म० बुद्ध ने उनके आश्रम में जाकर वाद किया था। यह आश्रम रम्यक परिब्राजक का था और श्रावस्ती के पूर्व कोष्टक भाग के पास अवस्थित था। म० बुद्ध ने वहां जाकर जातिवाद का निर्सन किया था। म० बुद्ध के उपदेश को सुनकर बहुत से ब्राह्मण उनके भक्त हुये थे।† जानुश्रोणि ब्राह्मण को पिलोतिक नाम के परिब्राजक ने बताया था कि वह क्यों म० बुद्ध का भक्त हुआ है।÷ निस्सन्देह श्रावस्ती में बौद्ध भिक्षुओं और भिक्षुणियों की भीड़ लगी रहा करती थी।卐 सुदत्त सेठ मिगारमाता आदि ग्रहस्थ बौद्ध संघ के अनन्य भक्त थे। इन्होंने बौद्ध भिक्षुओं के लिये बड़े २ आराम, विहार और स्तूप बनवाये थे।

---

* भ० महावीर स्मृति ग्रन्थ (आगरा) भा० १, पृष्ठ १८८-१९१

× संक्षिप्त जैन इतिहास, भा० २ खंड १ पृष्ठ १८०—१८५

= संक्षिप्त जैन इतिहास, (सूरत), भाग २ खंड १ पृष्ट ९२

† मज्झिम निकाय (हिन्दी), पृष्ट १०२

÷ पूर्व प्रमाण, पृ० १११

卐 पूर्व पृ० २५८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रमण लोग पतित से पतित प्राणी का उद्धार करने के लिये जागरूक रहा करते थे—वे पापी से घृणा नहीं करते थे। जैन तीर्थङ्कर भ० महावीर के अहिंसा धर्म का आदर्श अनुयायी यमपाल एक चांडाल ही था। चांडाल से जैन घृणा नहीं करते थे, अपितु चांडाल कर्म से घृणा करते थे। यमपाल से चांडाल कर्म—हिंसा उन्होंने छुड़ा दिया था। श्रावस्ती के पास अङ्गुलिमाल्य नामक एक हिंसक जाति रहतो थी। वे लोग इतने नृशंस थे कि मानवों को भी मार डालते थे। म० बुद्ध को उस जाति का एक डाकू मिला, जो अपनी मां को ही मारने के लिये उतारू हो रहा था। म० बुद्ध पर उसने प्रहार करना चाहा, परन्तु उनकी अमित दया के समक्ष वह किंकर्तव्यविमूढ़ हो रह गया। अहिंसा धर्म उस के मन भाया और वह बौद्ध भिक्षु हो गया।

श्रावस्ती के राजा प्रसेनजित और उनकी रानी मल्लिका बड़े उदारचित्त थे। उन्होंने एक संघाराम बनवाया था, जिसमें भिक्षु, परिव्राजक, अचेलक, आजीविक, निर्ग्रन्थ (जैन श्रमण) आदि दार्शनिक लोग इकट्ठे होकर धर्मचर्चा किया करते थे।* एक बार म० बुद्ध भी वहाँ पहुंचे। तब सम्राट् प्रसेनजित ने उनसे आकर पूछा था कि बुद्ध अन्य धर्म प्रवर्तको मङ्खलिपुत्र गोशाल, निर्ग्रन्थ ज्ञातृ पुत्र (महावीर स्वामी) आदि से आयु में कम हैं या अधिक ×। बौद्ध ग्रन्थों के इन उल्लेखों से स्पष्ट है कि श्रावस्ती में बौद्धों के अतिरिक्त आजीविक और निर्ग्रन्थ (जैन) श्रमणों का भी बाहुल्य था। जिस प्रकार म० बुद्ध अपने गृह त्याग के

---

*Life & works of Buddhaghosha, p. 109

× मज्झिम निकाय, पृष्ट १२४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पश्चात् कुछ समय तक नग्न जैन श्रमण रहे थे, उसी प्रकार आजीविक सम्प्रदायका नेता मङ्खलिपुत्र गोशाल भी प्राचीन जैन श्रमण था।† वह श्रावस्ती के पास का ही रहनेवाला था और उसका अधिकांश समय श्रावस्ती में बीता था। उसने पूर्व और अङ्ग ग्रन्थों का अध्ययन किया था; किन्तु जब भ० महावीर ने सर्वज्ञ होने पर भी उसे अपना प्रमुख शिष्य, गणधर नहीं बनाया तो वह श्रावस्ती लौट आया और आजीविक मत का संस्थापक बना। आजीविक श्रमणों का सम्प्रदाय जैनों से मिलता जुलता था और अन्त में वह जैनों में ही समा गया।

किन्तु श्रावस्ती से जैन श्रमणों का सम्बन्ध-सम्पर्क बहुत पुराना है और वे श्रावस्ती में बौद्धों के बाद तक बने रहे। ए अतीव प्राचीनकाल से जैनी श्रावस्ती को अपना तीर्थ मानते आये है, ÷ क्योंकि उनके तीसरे तीर्थङ्कर संभवनाथ का जन्म श्रावस्ती में हुआ था और उन्होंने श्रावस्ती के सन्निकट सहेतुक वन में तप तपा था, जिसके निशानात अब भी वहां मिलते हैं। राजा दृढ़ जितारि के वह पुत्र थे और रानी सुषेणा उनकी माता थी* राजा जितारि जब मुनि हुये तब श्रावस्तीका शासन सूत्र संभवनाथ जी ने संभाला। वह इक्ष्वाक वंश के नर-रत्न थे। उनका राजचिन्ह 'अश्व' (घोड़े) का था× । श्रावस्ती

†संक्षिप्त जैन इतिहास, भा० २ खंड १ पृ० ६२–७२

÷ सावत्थि महातित्य–कथाकोष पृ० ७१

*सावित्थीए संभवदेवो य जिदारिणा सुसेणाए।
मग्गसिर पुण्णिमाए जेट्ठारिक्खमेम संजादो ॥ ५२८ ॥ ४ ॥

—तिलोयपण्णत्ति

× उत्तर पुराण ४९ । ३६ ; हरिवंशपुराण ६०। १८४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रदेश अपने अच्छे घोड़े के लिये प्रसिद्ध था—वहां के लोग सुन्दर अश्वरथों में बैठकर घूमा—फिरा करते थे*। अतएव उनके राजा का राजचिन्ह अश्व होना स्वाभाविक था। संभवनाथ जी राज—भोग भोगते हुये भी विवेकशील और जागरूक थे। उपयुक्त समय में उन्होंने मुनिव्रत धारण किया और तपश्चरण द्वारा कर्म—पुद्गल के चुंगल से अपने को मुक्त करके वह कैवल्याधिपति हुये थे। वह कार्तिक शुक्ल चतुर्थी का पवित्र दिन था। भ० संभवनाथ दो दिन का उपवास करके सहेतुक बन में शाल्मलिवृक्ष की छाया में ध्यान मग्न बैठे हुये थे कि उनका परम पुरुषार्थ फलित हुआ—वे केवल ज्ञानो हो गये। चौदह वर्षों तक निरन्तर तप और ध्यान एवं मौन—अनुष्ठान करके संभवनाथ जी ने जीवन्मुक्त परमात्म पद पाया था। उपरांत वह लोक का कल्याण करने में निरत हो गये। सारे आर्यखंड में विहार करके उन्होंने लोक को सत्य और अहिंसा के दर्शन कराये। श्रावस्ती के वह सुपूत विश्व विभूति बने थे—श्रावस्ती के अधिवासियों को उनपर गर्व था—उन्होंने संभवनाथ जी की जन्म-जयंती कार्तिकी पूर्णिमा को मनाई—वही तो संभव तीर्थङ्कर की जन्मतिथि थी। यही कार्तिकी पूर्णिमा प्राचीन भारत का राष्ट्रीय त्यौहार हो गया†।

संभवनाथ जी ने आर्यक्षेत्र में विहार किया और उपरान्त सम्मेदशिखिर से सिद्ध पद प्राप्त किया था। उन्होंने श्रावस्ती को अपने पुण्यकार्यों से पावन तीर्थ में परिणत कर दिया,

---

*मज्झिमनिकाय, पृ० १११ व ४५२

†जब म० बुद्ध श्रावस्ती में थे तब उन्होंने कार्तिकी पूर्णिमा को कौमदी उत्सब मनाया था। (मज्झिमनिकाय, पृ० ४६४)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रावस्ती में जैन श्रमणों का मुख्य केन्द्र स्थापित हो गया। दूर-दूर से जैन श्रमण आ-आकर वहां तप और ध्यान का अनुष्ठान करते थे।

श्रावस्ती की महा अटवी (सहेतुक वन) कालांतर में एक प्रसिद्ध तपोभूमि हो गई—वहां जैन मुनियों का आश्रम स्थापित हुआ। वह एकान्त स्थान था, किसी तरह की वाधा वहां नहीं थी।= श्रमण चन्द्र ने वहां तप किया और सिद्ध पद को पाया; इसलिये श्रावस्ती सिद्धक्षेत्र भी हो गया। ÷जैन श्रमणों के लिये वह पतितपावन कल्याण भूमि हो गई। यहां द्वीपायन मुनि भी तपस्या करने आये थे। द्वीपायन श्रावस्ती के राजा थे—मनोरमा उनकी रानी थी। एक दिवस राजा द्वीपायन ने हरेभरे आम के वृक्ष को सूखा हुआ देखा, जिससे उनको वोध हुआ कि यौवन भी जरा और मृत्यु से अलिप्त नहीं है। वह दिगम्बर मुनि हो गये और सारे लोक में घूम-घूम कर धर्मप्रचार करने लगे।× तीर्थङ्कर संभवनाथ के त्याग और वैराग्य के आदर्श को उपरान्त श्रावस्ती के इन राजाओं ने मूर्तमान बनाए रक्खा था।

श्रावस्ती में एक अन्य समय सुकेतु नाम का राजा राज्य करता था। उसे द्यूत क्रीणा का व्यसन लग गया था। एक वार वह जुये के दांव में सब कुछ हार गया। इस अपमान से वह दुखी हुआ और जैन गुरुओं के पास आश्रम में पहुंचा। सुदर्शनाचार्य से उसने धर्मोपदेश सुना। वह मुनि

= 'महाटवी विवेशायं स्त्री षाण्ड पशुवर्जितम्।'—कथा-कोष पृ० १८७

÷ अंतकृतदशांग ६३

× हरिषेण, कथाकोष, पृ० १६६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

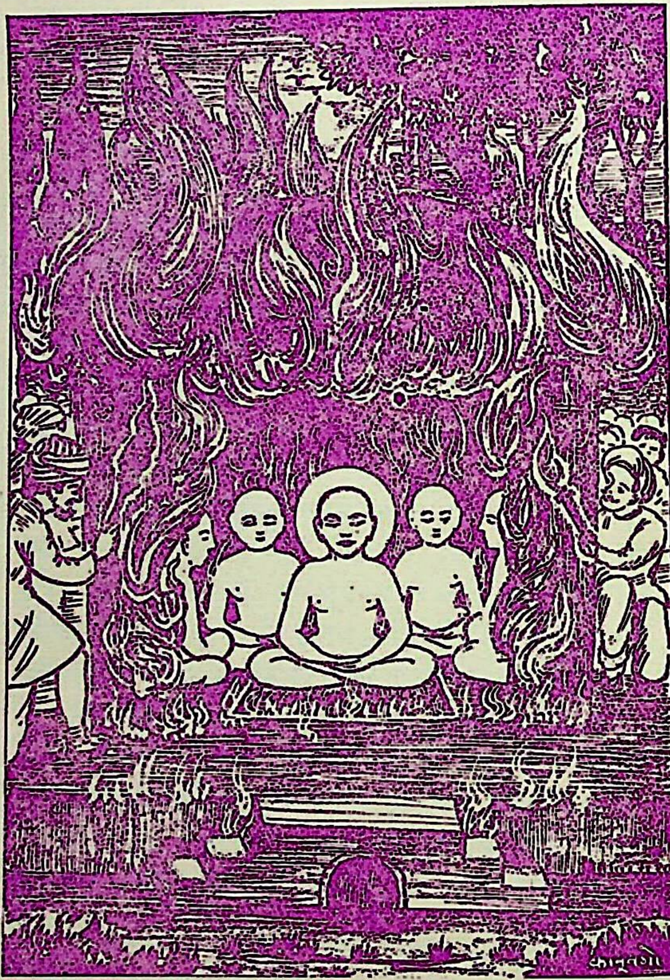

'समाधि दशा में वे हिलडुल नहीं सकते'—यह विचार कर रिष्टामञ्च ने वस्तिका में आग लगा दी ! (पृष्ठ २७)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हुआ और मानव जीवन को सफल बना सका।* जैन श्रमणों द्वारा पतितों का उद्धार किया जाना स्वाभाविक था।

श्रावस्ती का जैन श्रमण संघ दूर-दूर तक प्रसिद्ध हो गया था। वैताढ्य जैसे दूर देश के विद्याधर भी उसकी वंदना करने आते थे। वहाँ के श्रमण अपने ज्ञान, तप और लोकहित कामना में जागरूक रहते थे। श्रमण संघ का यह अभ्युदय कुछ विद्रोहियों को असह्य हो उठा था। एक बार जब कुलाल के श्रमण संघ का नेतृत्व आचार्य वृषभसेन कर रहे थे, तब श्रमणों का धर्म कसौटी पर कसा गया। रिष्टामच्च नामक विद्रोही श्रमणों की उदारवृत्ति से ऊब गया—उसने सोचा, चाणक्य की नीति का अनुसरण करना ठीक है—जड़ मूल से वृक्ष को साफ कर देने में ही मनचीती होना संभव है—न रहेगा बांस, न बजेगी वांसुरी! उसने यही किया। वृषभसेन परिषद् सहित वस्तिका में ध्यानरत बैठे हुये थे—'समाधि दशा में ये हिलडुल नहीं सकते, यह विचार कर रिष्टामच्च ने वस्तिका में आग लगा दी—धू धू कर वह जलने लगी और अग्नि की ज्वाला में वीर श्रमणों के शरीर भस्मभूत होने लगे।× मोहजयी थे वे वीर, आसन से जरा भी विचलित नहीं हुये—समभावों से उपसर्ग को उन्होंने सहन किया और अमर हो गये। अहिंसा की परम पालनीयता के समक्ष उन्होंने अपने प्राणों का मूल्य कुछ भी न माना! वे जानते

---

*अस्मिन्भारतेवर्षे कुणाल विषये पुर—श्रावस्ती तत्र राजा भूत्सुकेतुर्भोग तत्पर: ७२–५६ उत्तर पुराण।

× "वसदीए पलिदाए, रिट्ठामच्चेण उसहसेणो वि, आराधणं पवण्णो, सह परिसाए कुलालम्मि ॥९७॥ —भगवती आराधना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो थे कि जीवन प्राण तो एक न एक दिन साथ छोड़ेंगे ही, फिर जो सदा साथ रहनेवाले धर्म हैं, सत्य और अहिंसा, उनको कैसे और क्यों छोड़ा जावे? उन्होंने तो माना कि रिष्टामच्च उनका कैसा उपकारी है जो उनको शरीर के बन्धन से मुक्त करना चाहता है। वे मुक्त जीव बनेंगे। कुणालदेश, जहां श्रावस्ती अपनी शोभा बढ़ा रही थी, वहां का श्रमण संघ लोक को अपने आदर्श आचरण से अहिंसा द्वारा मुक्ति पाने का सन्देश दे रहा था।

संभवतः इन्हीं वृषभसेनाचार्य के उपदेश को सुनकर श्रावस्ती नरेश जयसेन अपने प्रजाजनों सहित जैनधर्म में दीक्षित हुये थे। 'जयसेन ने जैनधर्म की दीक्षा ली है'—यह समाचार जब बौद्धभिक्षु शिवगुप्त ने सुना तो वह उनके पास आया और चाहा कि वह जैनधर्म छोड़ दे। किन्तु जयसेन के मन पर जैन अहिंसा की गहरी छाप लग चुकी थी। उसने भिक्षु की बात नहीं मानी, बल्कि अपने राज्य भर में जैन मंदिर और विहार बनवाकर जयसेन ने जैनधर्म का खूब प्रचार किया। शिवगुप्त को यह बुरा लगा। पृथिवीपुर का राजा सुमति बौद्धधर्मपरायण था। शिवगुप्त ने उसको उसकाया और उसके सहस्रभट योद्धा को श्रावस्ती भेज दिया, किन्तु जयसेन ने उसे परास्त कर दिया। सहस्रभट खिसिया गया और कूटभाव से मुनि हो गया। एकदा जब जयसेन जिनेन्द्र अर्चा कर रहे थे, तब उसने धोखे से खड्ग प्रहार करके उनके प्राणान्त कर दिये। जयसेन के पुत्र वीरसेन इस घटना से मर्माहत हुये; परन्तु जैन गुरुओं ने उनको अहिंसा धर्म में दृढ़ कर दिया।×

× हरिषेण कथाकोष, पृ० ३४८-३४९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उन्होंने भी जैनधर्म का प्रभाव फैलाया। इस घटना के पश्चात् ही संभवतः वृषभसेन जी को ससंघ नष्ट करने की उपरोक्त घृणित घटना घटित हुई। ये घटनायें संभवतः ईस्वी प्रारंभिक शताब्दियों में घटित हुईं।

ऐसे ही श्रावस्ती का निर्ग्रन्थ श्रमण संघ अपनी धर्मनिष्ठा और जनोपकारी कार्यों के लिये लोकमान्य हो गया था।

अहिच्छत्रपुर के वैदिक विद्वान् शिवशर्मा एक वार श्रावस्ती आ निकले। वहां उन्होंने दमवर आचार्य के साथ धर्म चर्चा की। वह इतने प्रभावित हुये कि जैन श्रमण हो गये। श्रावस्ती सद्धर्म का केन्द्र जो बन गया था। (जिन धर्म समाकर्ण्य तदा दमवरान्तिके; शिव शर्मा सवैराग्यो दधौ जैनेश्वरं तपः॥—कथाकोष पृ० १६७) श्रावस्ती के नरेश जैन संघ को बड़ा आदर करते थे और श्रमणों के धर्मोपदेश को चाव से सुना करते थे। श्रमण धर्म की मान्यता सब प्रकार के लोगों में हो रही थी। एक समय में श्रावस्ती के राजा शांतायुध के पुत्र शीलायुध इक्ष्वाकु वंश में प्रख्यात थे। शीलायुध एक दिन वन विहार को गये और तापसों के आश्रम में जा पहुंचे। तापस कन्या ऋषिदत्ता से उनकी भेंट हुई—दोनों ही परस्पर एक दूसरे पर मोहित हुये और रतिकेलि में आनन्दरेलियां करने लगे। ऋषिदत्ता ने एक सुन्दर पुत्र-रत्न को जन्म दिया किन्तु पुत्र का लालन-पालन वह न कर सकी—प्रसवान्त में उसके प्राणपखेरू उड़ गये। एक नाग-कन्या ने उस शिशु को पाल-पोष कर बड़ा किया। वह एक जैनी श्राविका थी और अहिंसा धर्म को पालने और फैलाने में उसे आनन्द मिलता था। शिशु को उसने धर्मामृत पान कराया था और उसका नाम एणीपुत्र रक्खा था। जब वह कुमार वयस्क हुआ, तो नाग-कन्या ने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसको राजा शीलायुध को सौंप दिया। नाग-कन्या के उपदेश से शीलायुध ने जैनधर्म को भी अपनाया—वह अहिंसा धर्म का श्रद्धालु हुआ। वृद्धावस्था को सन्मुख देख कर शीलायुध ने विवेक से काम लिया। ऐणी पुत्र को राज्य भार सौंपा और स्वयं श्रावस्ती के श्रमण संघ में सम्मिलित हो मुनि हो गया। ऐणी पुत्र की पुत्री राजकुमारी प्रियंगु सुन्दरी का विवाह श्री कृष्ण जी के पिता वसुदेव जी के साथ हुआ था। वसुदेव जी के सम्बोधन से ऐणी पुत्र ने तापस-भेष त्याग कर जैन मुनि का व्रत धारण किया।* इस प्रकार श्रावस्ती के श्रमण ही नहीं वहां के जैन गृहस्थ भी धर्म का उद्योत करने में अग्रसर थे।

श्रावस्ती में सेठ कामदत्त एक धर्मात्मा जैनी थे। एक दिन उन्हों ने सुना कि श्रमणाचार्य मृगध्वज को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई है। देवता भी उनकी वन्दना करने आये हैं। वह भी केवली मृगध्वज की वन्दना करने गये। भक्तिभाव से उन्हों ने धर्मोपदेश सुना और अपने पूर्वभव पूंछे। पूर्व वैर के वश हो उन्हों ने एक भैंसे को लंगड़ा कर दिया था—पर पीड़न का भयंकर परिणाम सुनकर, वह अपने पापमल के भार को पश्चाताप द्वारा हल्का कर गये। श्रावस्ती के जितशत्रु राजा के पुत्र केवली मृगध्वज थे। इक्ष्वाकु वंश के वह नर-रत्न थे। श्रावस्ती के उद्यान से उन्हों ने सिद्धपद पाया और श्रावस्ती की पवित्रता में चार चांद लगा दिये—श्रावस्ती सिद्धक्षेत्र बन गई। सेठ कामदेव ने केवली मृगध्वज के सिद्धक्षेत्र पर एक नयनाभिराम जिनमंदिर बनवाया, जिसमें उन्हों ने केवली मृगध्वज की रत्नमई प्रतिमा विराजमान की और पापमोचन के लिये भैंसे की स्वर्णमूर्ति भी बनवाई; परन्तु अपने पाप—हिंसक कर्म की

*हरिवंशपुराण, सर्ग २८ श्लो० ६-१० एवं ३६-७१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आलोचना करने के भाव को प्रदर्शित करने के लिये उसके तीन पैर ही बनवाये।÷ ऐसे धर्मात्मा और पापभीरु थे श्रावस्ती के वे श्रावक लोग! मूक पशु के प्रति किये गये अत्याचार के अपराध और पाप का परिशोध करना वे अपना कर्तव्य मानते थे। श्रमण संस्कृति की नींव जो अहिंसा पर टिकी हुई है!

श्रावस्ती में ही एक दूसरे जैन सेठ नागदत्त रहते थे। वे अपनी सुन्दर पत्नी नागदत्ता के साथ भोगों में आसक्त हो रहे थे। काम-काज के लिये उन्हों ने एक ब्राह्मण पुत्र रख लिया था। कालान्तर में वह सुन्दर युवक हो गया। नागदत्ता उसके यौवन पर मुग्ध हो गई और उसके साथ भोग भोगने लगी। नागदत्त यह देखकर अवाक् रह गया। जग के सम्बन्ध उसे फीके जंचे और भोग काले नाग के समान जान पड़े। उसने मोह को जीत लिया। श्रावस्ती के बाहर वन में जाकर उसने निर्ग्रन्थ श्रमणाचार्य श्री सागरसेन से दीक्षा ली और तप-रत होकर मुक्ति पद प्राप्त किया※! लोगों ने सिद्धभूमि श्रावस्ती का जय जयकार किया!

इस प्रकार श्रावस्ती के श्रमण निर्ग्रन्थ और उनके भक्त श्रावक निरन्तर लोक में धर्म का प्रकाश फैलाते थे। जैनमंदिरों और विहारों में निरन्तर चार प्रकार का दान अर्थात् (१) अभय, (२) आहार, (३) औषधि और (४) ज्ञान दान दिया जाता था। जैन संघ के उपाध्याय वृन्द शास्त्र और शस्त्रादि कलाओं में निष्णात थे। उन पाण्डित्य और ज्ञान की प्रतिभा बड़े बड़े विद्वानों को चकित करती थी। हम देख चुके हैं कि

÷ हरिवंशपुराण, सर्ग २८ श्लोक १९ इत्यादि व सर्ग २६ श्लोक १-४

※ करकंडुचरिउ (कारंजा) १०/६/१-१०, पृष्ठ १८१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शिव शर्मा जैसा वेद-वेदांग-पारङ्गत विद्वान् भी उनके ज्ञान से प्रभावित हुआ था। जैन उपाध्याय महाराज के निकट राजा और रंक, सब ही प्रकार के नागरिकों के बालक विद्याध्ययन करने आते थे। उनको ब्रह्मचर्यव्रत पालना पड़ता था—वे सब एक ब्रह्मचारी के रूप में रहकर श्रावकों के घर अथवा आहार-दानशाला में भोजन करते थे और क्रमशः विद्याध्ययन करते हुये पच्चीस वर्ष की आयु तक श्रमण संघ में रहते थे। शिक्षा का क्रम प्रायः सारे देश में एक समान था; अन्तर केवल इतना था कि जैन संघ में पहले मुख्य रूप में अंग और पूर्व साहित्य की शिक्षा दी जाती थी। उपरांत अन्य दर्शन-वेद-वेदांग-छन्द-व्याकरण-७२ कला-कौशल आदि सिखाये जाते थे।× श्रावस्ती के वणिक पुत्र अङ्गयै ने अङ्गपूर्व ग्रंथों का यथाविधि अध्ययन किया था।÷ इसी प्रकार अनेक शिक्षार्थी सब प्रकार की शिक्षा ग्रहण करते थे। श्रावस्ती शिक्षा और संस्कृति का महान् केन्द्र जो था।

एक दफा श्रावस्ती में मिगारमाता के प्रासाद पूर्वाराम में म० बुद्ध विहार कर रहे थे। उस समय गणक मौद्गलायन नामक ब्राह्मण ने शिक्षाक्रम का उल्लेख किया था। ब्राह्मण-गणकों और धनुर्धरों में भी क्रमिक शिक्षा प्रणाली प्रचलित थी। गिनती के लिये एक्का एक, दुक्के दो, तिक्के तीन इत्यादि पहाड़ों का क्रम तब भी प्रचलित था।❀ किन्तु जैन गणित शास्त्र की अपनी विशेषता थी। जैन लौकिक गणना-अङ्क गणित सबसे अधिक बढ़ा चढ़ा और परिपूर्ण था

× दासगुप्ता, जैन सिस्टम ऑव एजूकेशन, पृष्ठ २७-२८

÷ पूर्वं०, पृ० २६

❀ मज्झिमनिकाय, (हिन्दी), पृ० ४४२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैसे वह आज भी है। इसी प्रकार अन्य विषयों में भी जैन उपाध्यायों का ज्ञान अनूठा और सर्वाङ्गपूर्ण था।

जैन श्रमण और श्रावक ही केवल लोकोपकार के कार्यों में निरत थे, यह बात नहीं, प्रत्युत श्रावस्ती की निर्ग्रन्थ साध्वीयें और श्राविकायें भी जनहित के कार्य करने में किसी से पीछे नहीं थीं। भ० संभवनाथ श्रावस्ती के राजर्षि तीर्थङ्कर थे। उनका पहला समोशरण-परिषद श्रावस्ती के सहेतुक उद्यान में अवतरित हुआ था। अनेकानेक पुरुष-स्त्रियों ने व्रत-नियम ग्रहण किये थे। जैन संघ में स्त्रियों को भी धर्म-साधना करने के लिये पूर्ण स्वाधीनता थी। संभव भगवान् का उपदेश सुनकर धर्मार्या-नामक महिला अत्यन्त प्रभावित हुई—उन्होंने साध्वी के व्रत गृहण किये और आर्यिका हो गई। धीरे-धीरे भ० संभवनाथ जी के संघ में आर्यिकाओं की संख्या तीन लाख बीस हजार हो गई।† वे सभी रमणियां लोक से अलग एकान्त में धर्म सेवन करतीं थीं और अन्यों को धर्म के मार्ग में लगातीं थीं। उनकी अधिष्ठात्री संघनेत्री धर्मार्या थीं। उनमें अनेक पंडितायें थीं, जिनका कर्तव्य शिक्षार्थियों को ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा देना था। इस प्रकार वे आर्यिकायें अपना आत्मकल्याण करने के साथ ही लोकहित के कार्यों में निरत थीं। इस प्रकार श्रावस्ती का जैन आर्यिका संघ एक अत्यन्त प्राचीन काल से लोक प्रसिद्ध हो रहा था। श्रावस्ती का प्राकृतिक सौन्दर्य उन धर्ममूर्त महिलाओं के तपोवास से प्रतिभापूर्ण बन गया था। सहेतुकवन का एकान्त में इन आर्यिकाओं का आवास अहिंसा-संस्कृति को मूर्तिमान बनाये हुये था।=

---

†'खचतुष्क द्विवह्नियुक्त धर्मार्याद्यार्यिकागण :।'

—उत्तरपुराण पर्व ४६ श्लोक ४८

=कथाकोष (tr, by C. H. Tawney) पृष्ठ १३,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बौद्ध संघ में भी स्त्रियों को स्थान मिल सका, इसमें परोक्ष कारण जैन आर्यिका संघ था। बुद्ध-भक्त स्त्रियों ने जाकर शाक्य मुनि से अनुनय-विनय करके भिक्षुणी-संघ को जन्म दिलाया।‡ उपरान्त यह भिक्षुणी-संघ सर्वत्र फैलगया। श्रावस्ती में मिगार-माता इस संघ की परम उपासिका महिला थी। वह श्रावस्ती के सेठ मिगार की पुत्रवधू थी, किन्तु उन्होंने सेठ जी को म० बुद्ध का श्रद्धालु बना लिया था, इसलिये वह 'मिगार माता' कहलाई थी। मिगार माता का वास्तविक नाम विशाखा था। वह भद्दिय नगर के सेठ धनंजय की पुत्री थी और पुण्णवद्धन को व्याही थीं। मिगारसेट्ठि एक जैन थे और निर्ग्रन्थ मुनियों को दान देते और उपासना करते थे। विशाखा को जैन मुनियों का दिगम्बर (नग्न) भेष नहीं भाता था। सेठ जी को वह उल्टा पढ़ाया करती थी। एक दिन झल्ला कर मिगार सेठी ने उसको घर से ही निकाल दिया, किन्तु पंचों के कहने से उसको फिर घर में स्थान दिया। उसे बौद्धभिक्षुओं का आदर सत्कार करने की भी छुट्टी मिल गई।= बौद्धग्रंथ में लिखा है कि अन्ततः मिगारसेठी बुद्ध भक्त हो गये। जैन शास्त्रों में इनका कोई उल्लेख नहीं मिलता। बौद्ध ग्रंथों में और भी कई स्थलों पर जैनों का बौद्ध हो जाने का वर्णन मिलता हैं, जिससे साम्प्रदायिक स्पर्द्धा का ही बोध होता है। श्रावस्ती में ही राजपुत्र अर्जुन× और गरहदिन्न सेठ जैन धर्मपरायण बताये गये हैं,÷ किन्तु बौद्ध लेखक उनको भी अपने मत में दीक्षित करने का उल्लेख करता है। इन कथाओं में जैन मुनियों को

‡महावग्ग ४

=विसाखा वत्थु—धम्मपदट्ठ कथा (PTS. I) भा० २ पृ० ३८४

×थेरगाथा [साम्स आवदी वृदरन, पृ० ८३]

÷धम्मपदट्ठ कथा (PTS .I) २ । ४३४—४४७

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निमंत्रण स्वीकार करते हुये लिखा है, किन्तु यह बात जैनाचार के विरुद्ध है। अत : यह कथायें ऐतिहासिक तथ्य के स्थान पर साम्प्रदायिक स्पर्द्धा की ही द्योतक अधिक हैं। जो हो, इनसे यह स्पष्ट है कि श्रावस्ती में जैनों का प्राबल्य था और स्त्रियां भी उसके उत्कर्ष में सक्रिय भाग लेतीं थीं।

श्वेताम्बरीय जैन शास्त्रों में भी श्रावस्ती का वर्णन मिलता है। वह भी इसे तीर्थङ्कर संभवनाथ की जन्म भूमि मानते हैं। श्री जिनप्रभसूरि ने अपने "विविध तीर्थकल्प" में एक वर्णन "श्रावस्ती नगरी कल्प" नाम से दिया है, जिससे प्रगट है* कि श्रावस्ती कुणाल विषय में अवस्थित थी। वहाँ भ० संभवनाथ जी का रत्नविभूषित अतीव सुंदर जिन भवन था, जिसकी देखभाल माणिभद्र यक्ष किया करता था। माणिभद्र के विद्याबल से जिन भवन के किवाड प्रात: होते ही स्वयमेव खुल जाते थे और सूर्यास्त के होते ही बन्द हो जाते थे। उस अद्भुत कला-पूर्ण जिनभवन को सुल्तान अलाउद्दीन की आज्ञा से मलिक हब्बस ने धराशायी बना दिया, जब कि उसने बहरायच नगर को फतह किया था। जिनप्रभसूरि ने आगे लिखा है कि श्रावस्ती में समुद्रवंशी करावल्लनरेन्द्र के कुल में बुद्ध भक्त राज हुये थे, जिन्होने वहां बौद्ध विहार बनाये थे। कोशाम्बी के कासवपुत्र कपिल महाऋषि श्रावस्ती में आकर स्वयंबुद्ध हुये थे, जिनके उपदेश से पांच सौ चोर प्रतिबुद्ध होकर सिद्ध हुये थे। यहां के तिंदुग उद्यान में जमाली मुनि ससंघ रहा था। यहाँ का ढंक नामक कुम्हार जैन सिद्धांत का इतना ज्ञानी था कि उसने प्रियदर्शना नामक आर्यिका को धर्म में दृढ़ किया था। इसी उद्यान में पार्श्वपरम्परा के ऋषि केसी का

*विविधतीर्थ कल्प, (सिंधी जैन ग्रन्थमाला), पृष्ठ० ७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संवाद गौतम गणधर से हुआ था। यहां भ० महावीर के क
चतुर्मास हुये थे। श्रावस्ती में ही जितशत्रु और धारिणी के पु
खँदग हुये थे, जिन्होंने साधु दीक्षा ली थी। जब वह अप
पांच सौ शिष्यों सहित कुंभ कारकट नगर में थे, तब कि
धर्मद्रोही ने उनको यंत्र में पेल कर प्राणान्त कर दिया था
किन्तु श्रावस्ती के उन वीरों ने जबान से उफ भी नहीं की थी
अहिंसा महाव्रत को जो उन्होंने धारण किया था। श्रावस्ती
श्रमणभद्र और सुप्रतिष्ठ नामक धनवान गाथापतियों ने भ
महावीर से दीक्षा ली थी।= सांसारिक मोह ममता को उन्हों
जीत लिया था। श्रावस्ती के श्रावकों में शंख और पोखल
आदि उल्लेखनीय जिनेन्द्र भक्त थे। इन्होंने भ० महावीर
शंका समाधान किया था।=

अन्तिम तीर्थङ्कर भ० महावीर की धर्मामृत-वर्षा द्वा
पवित्र हुई श्रावस्ती की पतित पावन भूमि शताब्दियों त
अपने वैभव में झूमती रही। उसके वैभव को श्रामण-संस्
के पुजारियों ने विवेक-तुला पर संतुलित रक्खा; किन्तु स
दिन एक समान नहीं रहते। भारत में साम्प्रदायिक विद्वे
एक समय बड़ा अनर्थ किया-घर में आग लगी थी घर
ही चिराग से। श्रावस्ती के जैनों और बौद्धों को इस गृहक
को अग्नि में अपार क्षति उठानी पड़ी—उस समय यह
नहीं समझा कि यह क्षति जैन और बौद्ध श्रमणों की न
प्रत्युत भारतीय राष्ट्र की है—सारे लोक की है। आखिर श्र
संस्कृति लोकहितकर्त्री जो रही है। परिणामतः श्रावस्
बौद्ध श्रमणों का तो सर्वथा अभाव होने के साथ
बौद्ध संघ नामनिःशेष हो गया। किन्तु जैन श्रमण पर

=भ० महावीर का आदर्श जीवन (रतलाम), पृ० ४१८ व

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

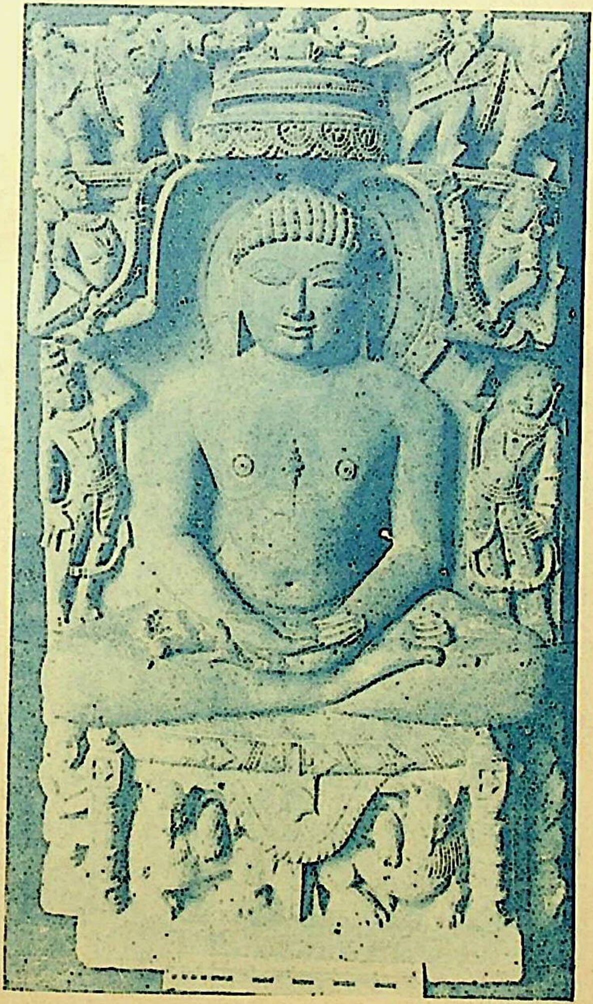

तीर्थङ्कर नेमिनाथ की मूर्ति (No. J 880 A)
[सहेट महेट से प्राप्त]
(प्रान्तीय संग्रहालय लखनऊ के सौजन्य से)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

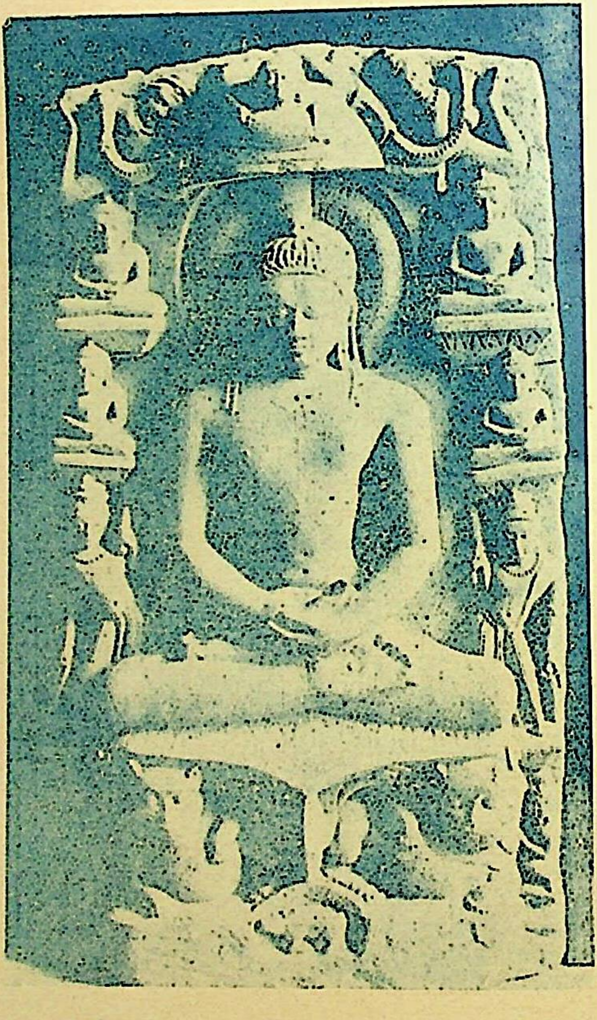

ग्यारहवें तीर्थङ्कर श्रेयांशनाथ की पद्मासन मूर्ति (No. J 856)

[सहेट महेट से उपलब्ध]

(प्रान्तीय संग्रहालय लखनऊ के सौजन्य से)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का अभाव होने पर भी श्रावस्ती में जैन धर्म श्रावक-श्राविकाओं द्वारा जीवित रखा गया। मध्यकाल में एक बार फिर जैनधर्म चमका, जैसा कि ११ वीं-१२ वीं शताब्दि की दिगम्बर जैन मूर्तियों के अभिलेखों से स्पष्ट है, जो सहेठ महेठ की खुदाई में उपलब्ध हुई थीं। इस समय जैनाचार्यों ने सभी जातियों के मानवों को जैनधर्म में दीक्षित करके एक बार फिर श्रावस्ती में "जैनं-जयतु-शासनं" सूत्र की विजय वैजयन्ती फहराई थी। 'श्रावस्ती पावन तीर्थ है'—अतः उसकी वन्दना करने दूर-दूर से लोग आने लगे थे। मुसलमानों के आक्रमणों से अपने पवित्रतीर्थ श्रावस्ती की रक्षा करने के लिये श्रावस्ती-नरेश सुहलदेवराय ने अपने प्राणों की बाज़ी लगादी थी। श्रावस्ती का बाल बांका न हुआ। किन्तु भारत का पतन उसकी ही देशद्रोही संतान के हाथों से हुआ। घर की फूट ने भारत को दासता की शृंखला में बांध दिया। अलाउद्दीन की सेना ने श्रावस्ती में नृशंस संहार किया—वहां के धर्मायतनों को उसने धराशायी बना दिया। जैन श्रावक यह दुर्दशा देखकर तिलमिलाते रह गये; फिर भी उन्होंने श्रावस्ती को भुलाया नहीं। लखनऊ, बहरायच, गोंडा आदि स्थानों के दिगम्बर जैन बन्धुगण बराबर, क्षतविक्षत श्रावस्ती की सार-संभाल करते आरहे हैं और अब तो उसके उद्धार के लिये उन्होंने एक संगठित उद्योग भी प्रारंभ किया है। वह अपने उद्योग में सफल हों और श्रावस्ती में पुनः जैन-संस्कृति के केन्द्र की स्थापना करें, यह भावना है। पुनः श्रावस्ती में स्वतंत्र भारत से अनुरूप जैन-बौद्ध और ब्राह्मण संस्कृतियों का त्रिवेणी-संगम लोक का पाप मोचन करने में समर्थ हो।

———

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रावस्ती के राजवंश

"धीरा राज्यधुरां त्यक्त्वा धृत्वांतेऽन्ये तपोधुरां ।
स्वर्गमेकऽपवर्गं तु जग्मुरादित्य वंशजा ॥१५॥१३॥"

—हरिवंश पुराण

उत्तर कोशल अथवा कुलाल देश की राजधानी श्रावस्ती प्राचीन काल से इक्ष्वाकु वंशीय क्षत्रियों द्वारा अधिकृत रही है। इक्ष्वाकु वंश के आदि पुरुष तीर्थङ्कर ऋषभ ही उसके आदि नरेश थे। ऋषभ ने लोगों को इक्षु-रस का उपयोग करना बताया था, इसलिये वह 'इक्ष्वाकु' कहलाते थे† और कोशल के लोग अपना नेह जताने के लिये उनको 'कौशर्लय' भी कहते थे।* ऋषभदेव के उपरान्त उनके पुत्र भरत पहले विश्व-सम्राट हुए थे। उनके आदित्ययशस् नामक पराक्रमी पुत्र हुए। भरत के तपोवास गृहण करने पर आदित्ययश कोशल के राजा हुए। इनके नाम की अपेक्षा कोशल और कुणाल राज्यों का इक्ष्वाकु वंश आदित्य अथवा सूर्य वंश के नाम से प्रख्यात् हुआ था तथा पोदनपुर का दाक्षिणात्य इक्ष्वाकु वंश बाहुबलि के पुत्र सोमयशक नाम की अपेक्षा 'सोम' या 'चन्द्र' वंश के नाम से प्रसिद्ध हुआ था।+ सूर्य और चन्द्र वंशों में बड़े-बड़े राजा

---

†आदिपुराण, अ० १६—'इक्षू नु आकयति कथयतीति इक्ष्वाकुः'

*'उसभेणं अरहा कोसलिए'—समवायाङ्ग सूत्र

+हरिवंश पुराण, सर्ग १३।

Gaṅesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महाराजा राज्यलक्ष्मी का भोग भोग कर तपश्चरण करने के लिये वनोवास ग्रहण करते रहे हैं। ऐसे आदर्श नरेशों को पाकर कोशल और श्रावस्ती सदा सनाथ बने रहे! भारत की दस राजधानियों में श्रावस्ती भी एक थी।=

वैदिक साहित्य भी कोशल के मूल राजाओं को इक्ष्वाकु वंश से समुद्भूत बताता है—वे सूर्यवंशी कहलाते थे। श्रावस्ती का प्रदेश कोशल में अन्तर्भुक्त था।॥ रामायण काल में श्री रामचन्द्र जी के पुत्र लव ने श्रावस्ती को अपनी राजधानी बनाया था। 'महाभारत' काल में भी यहाँ सूर्यवंशी राजा शासनाधिकारी थे। कोशल नरेश बृहद्बल ने महाभारत-युद्ध में कौरवों के साथ पाण्डवों के विरुद्ध युद्ध किया था।÷ जैन 'हरिवंशपुराण' में भी महाभारत-युद्ध में भाग लेने वाले राजाओं में एक राजा बृहद्ध्वज नाम के बताये गये हैं।× बृहद्बल को ही बृहद्ध्वज जैनाचार्य ने लिखा हो तो आश्चर्य नहीं! किन्तु 'महाभारत-युद्ध' के पश्चात् देश की राजनैतिक स्थिति विषम हो गई थी और अनेक छोटे-छोटे राज्य बन गये थे। इनमें से कितने ही राज्यों में प्रजातंत्रात्मक गणराज्य-शासन प्रचलित था। कोशल और काशी राज्य के क्षत्रियों ने संगठित हो कर अपना 'कोशल-काशी-गणराज्य' स्थापित किया था। जब

=(१) चम्पा, (२) मथुरा, (३) वाराणसी, (४) सावत्थी, (५) साकेता, (६) हस्तिनापुर, (७) कंपिलपुर, (८) मिथिला, (९) कोशाम्बी, (१०) राजगृह।

॥कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव इण्डिया, भा० १ पृष्ठ ३०८

÷ महाभारत, वनपर्व अ० २५३, सभापर्व अ० ३० एवं भीष्मपर्व अ० १६

× 'भानुर्विष्णुर्बृहध्वजः ॥१३०॥५०॥'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्तिम तीर्थङ्कर भ० महावीर वर्द्धमान पावा से निर्वाण को प्राप्त हुये, तब नौ मल्लकि, नौ लिच्छवि और अठारह काशी-कोशल के गण-राजाओं ने दीपोत्सव मनाने में भाग लिया था।ऽ इन अठारह गण-राजाओं में श्रावस्ती और साकेत के नरेश भी सम्मिलित थे। इस समय मगध के सम्राट् अजातशत्रु ने कोशल के एक वड़े भाग को अपने अधीन कर लिया था। उत्तर भारत के प्रायः सभी राज्यों पर मगध का शासनाधिकार हो गया था। मल्ल, लिच्छवि और काशी-कोशल के गणराज्यों ने मिलकर मगध सेना से युद्ध किया था; किन्तु राजलक्ष्मी उनसे रूठ चुकी थी—विजयमाल मगधराज के गले में पड़ी थी।× इसी समय शाक्य गणराज्य का भी पराभव हुआ। श्रावस्ती भी अपनी स्वाधीनता से हाथ धो बैठी थी।

भ० महावीर के धर्मोपदेश को सुनकर मगध के राजाओं में राष्ट्रधर्म को पालन करने की तीव्र रुचि जागृत हो गई थी—समूचे देशको एक शासनसूत्र में बांधने के लिये वे दृढ़ प्रतिज्ञ हुये थे। अजातशत्रु ने इस शुभकार्य का श्रीगणेश किया था, परन्तु इसको आगे नन्दिवर्द्धन् और फिर चन्द्रगुप्त मौर्य ने ही वढ़ाया। मौर्यों के शासनकाल में सारा भारत और अफ़गानिस्तान एक छत्र राज्य के अन्तर्गत आ गया। श्रावस्ती उसके बाहर नहीं थी। नन्दिवर्द्धन्, महापद्म, चन्द्रगुप्त, सम्प्रति, शालिशूक आदि सम्राटों ने देश में 'एक राष्ट्र' की भावना को जागृत किया था और उन्होंने जैनधर्म के अहिंसा-भाव का प्रचार भी देश-विदेश में किया था। श्रावस्ती में जैनधर्म का प्रभाव पूर्ववत् चलता रहा। किन्तु मौर्यों के पश्चात् शुङ्ग और

ऽकल्पसूत्र १२८

× इण्डियन ऐंटीक्वेरी २१।२११ एवं जर्नल ऑव दी बिहार ऐंड ओड़ीसा रिसर्च-सोसाइटी, १।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

काण्ववंश के राजाओं के समय में ब्राह्मण धर्म का प्राबल्य देश में बढ़ा। कलिङ्ग-सम्राट् खारवेल ने एक बार फिर अहिंसा धर्म को दिगन्तव्यापी बनाने का उद्योग किया। उनके पश्चात् आन्ध्रवंश के राजाओं ने भारत का शासनभार संभाला। श्रावस्ती उनके राज्य का एक भाग बना रहा।※

ईस्वी प्रारंभिक शताब्दियों में श्रावस्ती-प्रदेश गौड़ देश के नाम से प्रसिद्ध हुआ प्रतीत होता है—इस समय के लगभग रचे हुये पुराणों में श्रावस्ती को गौड़ देश में अवस्थित लिखा है।× यूं तो गौड़ देश से बंगाल अभिप्रेत है; हो सकता है कि बंगाल के शासनाधिकार में श्रावस्ती आई हो, इसलिये उसे गौड़ देश में लिखा है। गुप्त राजवंश से पहले गौड़वंश और उसके राजा लोकवर्द्धन का पता चलता है।÷ क्या यह संभव नहीं कि गुप्तवंश से पहले गौड़वंश के शासनाधिकार में श्रावस्ती रही हो? श्रावस्ती के राजा लोग उनके आधीन रहे हों? यद्यपि यह स्पष्ट है कि सन् २७५ और ३१९ ई० में श्रावस्ती के राजसिंहासन पर खीरधार और उनका भतीजा आरूढ़ हुए थे। कनिष्क के एक शताब्दि पश्चात् श्रावस्ती में विक्रमादित्य नाम का राजा राज्याधिकारी था, जिसने बौद्धों को नष्ट किया था। बौद्धविद्वान् मनोर्हित ब्राह्मणों से शास्त्रार्थ में परास्त होने के कारण इतना लज्जित हुआ कि उसने अपनी ऐहिक जीवन लीला असमय में ही समाप्त कर ली थी! उपरान्त श्रावस्ती गुप्त-साम्राज्य में अन्तर्भुक्त हुई।+ 'वायुपुराण' में

※संक्षिप्त जैन इतिहास (सूरत) भा० २ खंड १ और २ देखो।

×मत्स्यपुराण २१।३०; कूर्मपुराण, २३।१६; लिङ्गपुराण ६५।

÷इम्पीरियल हिस्ट्री ऑव इन्डिया, पृष्ठ ३४

+इण्डियन हिस्टारीकल क्वारटर्ली, भा० १ पृ० १६५।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक स्थान पर गुप्तों के राज्य का विस्तार इस प्रकार लिखा है:—

'अनुगङ्गा प्रयागंश्च च साकेतं मगधान्स्तथा।
एतान्जनपदान्सर्वान् भोक्ष्यन्ते गुप्तवंशजाः ॥

अर्थात्—गङ्गा के आसपास के देशों का, प्रयाग का, साकेत का और मगध देश का गुप्तवंशी राजा भोग करेंगे। अतएव गुप्तों के राज्यान्तर्गत श्रावस्ती का होना अनिवार्य है—कौशल की प्राचीन राजधानी साकेत उनके शासनाधिकार में थी। उधर गुप्तसम्राट श्री समुद्रगुप्त के इलाहबाद वाले लेख में कौशल विजय करने का उल्लेख मिलता ही है।+ सम्राट् स्कन्दगुप्त के समय का एक लेख जिला गोरखपुर के कहौम (प्राचीन ककुभ ग्राम) नामक गाँव से मिला है, जिसमें इस ग्राम में मद्र नामक धर्मात्मा पुरुष द्वारा एक स्तंभ बनवाये जाने और उस पर पांच तीर्थंकरों की मूर्तियां अङ्कित कराने का उल्लेख है=। यह स्थान श्रावस्ती से अधिक दूर न होने के कारण इस बात का समर्थक है कि गुप्त राजाओं का शासन श्रावस्ती तक विस्तृत था। और गुप्तकाल में उस ओर जैनों का प्रभाव उल्लेखनीय था।

गुप्तों के पश्चात् उत्तर भारत कुछ काल के लिये विदेशी हूण लोगों द्वारा पदाक्रान्त हुआ था; किन्तु इन हूणों को भारत के श्रमणों ने पराभूत कर दिया था—उनको श्रमण-संस्कृति में दीक्षित कर लिया था। हूण तोरमाण के गुरू

---

*किसी-किसी प्रति में 'अनुगंगं प्रयागं'—ऐसा पाठ भी मिलता है।

+भारत के प्राचीन राजवंश, भा० २ पृष्ठ २४६

=भारत के प्राचीन राजवंश, भा० २ पृष्ठ २८१।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैन श्रमण हरिगुप्त थे, जो संभवतः गुप्तवंश से सम्बन्धित थे×। तोरमाण का उत्तराधिकारी मिहिरकुल था। उसके विषय में चीनी यात्री हुएनसाँग ने लिखा है कि "श्रावस्ती का राजा मिहिरकुल बौद्धों का बड़ा शत्रु था। उसने बालादित्य के राज्य पर हमला किया। बालादित्य ने पहले तो उसको पकड़ लिया, परन्तु अन्त में छोड़ दिया।†" मिहिरकुल शैव मत का पोषक था।

उपरान्त श्रावस्ती वैसवंश के प्रमुख सम्राट् हर्षवर्धन के साम्राज्य में अन्तर्भुक्त हुई। सम्राट् हर्षवर्धन यद्यपि बौद्ध धर्म के अनुयायी थे, परन्तु वह बड़े उदार थे—वह ब्राह्मण और निर्ग्रन्थ (जैन) गुरुओं का भी आदर करते और उनसे धर्मचर्चा करते थे। हर्ष ने सारे उत्तरभारत में जीवहिंसा का निषेध कर दिया, फाँसी उठा दी, अनेक स्तूप बनवाये, सड़कों पर चिकित्सालय खोले और उनमें वैद्यों को नियत किया÷ संभवतः हर्ष ने श्रावस्ती के जेतवन संघाराम की भी यात्रा की थी। उनके एक ताम्रपत्र (६३१-३२ ई०) में श्रावस्ती राज्य का उल्लेख है।× 'दशकुमार चरित्र' में श्रावस्ती के राजा धर्मवर्द्धन लिखे हैं, जो संभवतः हर्षवर्धन के सामंत थे। हर्ष के पश्चात् उत्तर भारत की राजनैतिक स्थिति एक बार फिर विक्षिप्त हो गई। छोटे छोटे वीर सरदारों की बन आई। जिसने जहाँ मौका पाया राजा बन बैठा—देश छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त हो गया। इस समय ही आबू

× कुवलयमाला—जैनीज्म इन नॉर्थ इंडिया, पृ० २१०-२१२।

† भारत के प्राचीन राजवंश भा० २ पृ० ३०६।

÷ भारत के प्राचीन राजवंश, भा० २ पृष्ठ ३२८-३२९

× "भूगोल"—संयुक्त प्रान्ताङ्क (अप्रेल १९४०), पृष्ठ ३४५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर्वत के अग्निकुंड समारोह से उद्भूत चौहान आदि राजपूत भी आगे आये और भारत के प्राचीन अधिवासी आभीर, नाग, भर, कुरुम्ब आदि जातियों के बहादुर लोग भी शासनसूत्र संभाल सके। 'मञ्जुश्री मूलकल्प' नामक बौद्ध ग्रंथ में इस समय के लगभग मध्यदेश में विविध शक्तिहीन राजाओं का होना लिखा है*। गगा के के दोनों तटों, हिमालय की तलहटी और कामरूप में भी इसी प्रकार के छोटे-छोटे राज्य अस्तित्व में आ गये थे। श्रावस्ती में भी भर अथवा भारवंश के सरदार स्वाधीन राजा बन बैठे थे। इन्हीं में प्रसिद्ध सुहलदेवराय हुये थे, जिन्होंने मुसलमानों के दांत खट्टे किये थे। किन्तु उपरान्तकाल में राजपूतों के आपसी वैर और झूठे घमंड के कारण भारत की स्वाधीनता अपहृत हो गई! भारत पर मुसलमानों का अधिकार हो गया। श्रावस्ती कन्नौज के प्रतिहार और राठौर राजपूतों के राज्य से निकलकर मुसलमानों के अधिकार में पहुंच गई। अलाउद्दीन की सेना ने आकर श्रावस्ती को नष्ट भ्रष्ट कर दिया। महेन्द्रपाल (७६१-६२) और भवगुप्त द्वि० (११ वी० श०) के ताम्रपत्रों में श्रावस्ती राज्य का उल्लेख† हुआ, परंतु वह राज्यपुनः कहीं देखने को नहीं मिला।

---

*'कथितास्तु तदा काले साधनीयास्तु देहिभिः।
मध्यदेशे तथा मन्त्री भूपाला विविधास्तथा ॥६०३॥
विस्तरां सत्त्वदौर्बल्यां अल्पबुद्धिं निबोधताम्।

× × ×

नदी गंगा तत्र तीरे हिमाद्रेश्च नितम्बयोः।
कामरूपे तथा देशे भविष्यन्ति तथा नृपाः'॥६१३॥

†"भूगोल"—संयुक्त प्रान्ताङ्क, पृष्ट ३४५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गोरखपुर जिले के डोमनगढ़ के डोमों तथा सुल्तानपुर जिले के रायजगतसिंह बन्घल और कलहंस राजपूत का राज्य निःशेष हो गया। मुसलमानों ने श्रावस्ती को बहरायच में मिला दिया। अंग्रेजी शासनकाल में श्रावस्ती का उल्लेख पटवारियों के खेवट में और सहेट-महेट के खंडहरों में शेष रह गया; किन्तु म० गांधी के नेतृत्व में अहिंसक सत्याग्रह युद्ध में विजयी होकर आज भारत एक स्वाधीन गणराज्य बना है! भ० महावीर के निर्वाण समय में श्रावस्ती का 'काशी-कोशल'—वाला छोटा-सा गणराज्य आज पुनः विशाल भारत-गणराज्य का अंग बनकर चमकने लगा है। बहरायच के भाइयों में श्रावस्ती के पुनरुद्धार की भावना जागृत हुई है। 'गण राज्य का पूर्व गौरव पुनः मूर्तिमान हो भारत अभ्युत्थान में सहायक बन सकेगा'—यह उज्जवल भविष्य की बात मानों कोई भारत-मां के कानों में कह रहा है। श्रावस्ती के राजवंशों की यह कहानी मानव के उत्थान-पतन का प्रतिबिम्ब है। वह कह रहा है—"मानव जागृत हो और आगे बढ़।"

———

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(६)

भर अथवा भार राजवंश के नरेश।

"सुहिलदल अथवा सुहिलदेव राजपूत वंश का जैनी था, ऐसा बहुत-सी जगह कथन आया है। उस राजपूत वंश को भार, थारू या डोम कहते थे। स्थानीय कहावतों से इस राजा का सम्बन्ध सहेट-महेट (श्रावस्ती), अशोकपुर और अन्य स्थानों से पाया जाता है।"

—संयुक्त प्रान्त के प्राचीन जैन स्मारक (पृ० ६१)

भ० महावीर ने श्रावस्थी में आकर उत्सुक जनता को धर्मामृत पान कराया था। उस समय से श्रावस्ती में जैनधर्म पुनः अग्रस्थान को प्राप्त हुआ था। किन्तु समय के फेर से ईस्वी प्रारंभिक शताब्दियों में जब उत्तरापथ में भार शैन, वाकाटक और गुप्त वंशों के राजाओं एवं मिहिरकुल जैसे विदेशी विजेताओं द्वारा शैव एवं वैष्णव मतों का प्रसार किया गया, तो जैनधर्म का उत्कर्ष-सूर्य राहु-ग्रस्त हो गया। किन्तु वह अधिक समय तक हत-प्रभ नहीं रहा। संकट-ग्रस्त काल में भी उसका आधिपत्य मध्यम-श्रेणी के लोगों पर बना रहा। गुप्त और हर्ष के शासन कालों में जैनों के अपने मठ ठौर-ठौर पर थे, जिनमें प्रत्येक जाति के छात्रगण विद्याध्ययन करते थे। उस समय ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, किंवा विदेशी लोग भी जैन धर्म की शरण में आकर अपना आत्म कल्याण करते थे। ककुभ ग्राम (कहौम] के स्तंभलेख से स्पष्ट है कि उस समय जैन साधुओं के संघ यत्रतत्र विचरते थे और उनके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संसर्ग से यह प्रदेश पवित्र हो रहा था×। मद्र सदृश ब्राह्मण ने कीर्तिस्तंभ बनवाकर जिनेन्द्र भक्ति का परिचय दिया था। उदयगिरि [भेलसा] के गुफालेख से स्पष्ट है कि जैनधर्मानुयायी गुप्त साम्राज्य में उच्च राज कर्मचारियों के पदों को सुशोभित करते थे। गुप्तों की राजधानी में और साम्राज्य के अन्य प्रधान नगरों में यद्यपि ब्राह्मणों का बाहुल्य और आधिपत्य हो गया था, परन्तु ग्रामीण जनता अब भी अपने पूर्वजों की मान्यताओं की कायल थी और उनमें अधिकांश लोग जैन एवं बौद्ध धर्म के अनुयायी थे।* इस प्रकार यद्यपि प्रकट रूप में जैन धर्म की पूर्व समृद्धि निःशेष हो गई थी, परन्तु उसकी शक्ति जनता की श्रद्धा-नींव पर सुदृढ़ बनी हुई थी। हर्षवर्धन की धर्म सभा में हजारों जैन पंडित भी ब्राह्मणों और बौद्धों के साथ उपस्थित हुये थे। इस समय बौद्धों का भी अभ्युदय हुआ—उनको भी राज्याश्रय मिला; किन्तु जैन धर्म इस समय भी राज्य का आश्रय पाने से वन्चित रहा। जैनाचार्यों को यह कभी खटकती थी। ज्यों ही उनको अवसर मिला और राजपूत कुलों का आविर्भाव और आगमन उत्तर पूर्वीय भारत में हुआ कि जैनों ने उनका पथप्रदर्शन करने का उद्योग किया। अपने इस उद्योग में वे सफल भी हुये। मालवा के परमारों, ग्वालियर

× 'ग्राम-रत्ने ककुभ इति जनै स्साधु-संसर्गं पूते.'

—सं० प्रा० प्राचीन जैन स्मारक, पृ० ५

*"The capital of the Gupta emperors became the centre of Brahmanical culture, but the masses followed the religious traditions of their forefathers; and Buddhist and Jaina monastries continued to be public schools and universities for the greater part of India."—History of Aryan Rule in India, p. 156.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और पूर्वी राजपूतना के कछवाहों और कन्नौज के प्रतिहारों में अनेक शासक जैन धर्म के अनुयायी और पोषक हो गये थे। इन राजपूतों के पहिले से ही आभीर, भार आदि जातिओं के बलवान लोगों ने दक्षिणापथ और सौराष्ट्र से आकर अपना आधिपत्य गङ्गा-यमुना के मध्यवर्ती प्रदेश पर जमा रक्खा था। इन लोगों को जैन श्रमणों और बौद्ध भिक्षुओं से प्रोत्साहन मिला था। वर्णाश्रम-धर्म के श्रद्धालु सनातनी ब्राह्मण-पुरोहितों की भक्त-जनता अपने 'द्विजत्व' और उच्चकुल के अभिमान में, जैनों और बौद्धों को हेय दृष्टि से देखती थी; क्यों कि उन्होंने आभीर (अहीर), भर (भार), कुरुम्ब आदि जातियों को राज्यपद पर अधिकृत किया था और जन्मत: कुल-जाति को महत्व न देकर वे गुणों के उपासक थे। जैनाचार्यों ने अपने धर्म का साहित्य आभीरों की बोली अपभ्रंश-प्राकृत में रच दिया था;= जिसके कारण उनके धर्म का प्रसार सहज ही इन लोगों में हो गया था। कुषाणकाल से ही जैन धर्म और बौद्धतम चरमोत्कर्ष को प्राप्त हो चुके थे।×

श्रावस्ती के आसपास भी आभीर और भर जाति के लोगों की बस्तियां थीं। जैनाचार्यों ने उनमें जा-जाकर धर्मोपदेश दिया और उनको अपना भक्त बना लिया था। भार-शैव-वंश के नागराजाओं के समय से हो भर जाति के लोग कर्मक्षेत्र में आगे आ गये थे। भार-शैव-नरेश भव गुप्त को बघेलखंड में भर-लोगों से मानव-बल संग्रह करने में सहायता मिली प्रतीत

='अपभ्रंश प्राकृत का उद्गम आभीरों की बोली से हुआ है' इस के लिये 'भविष्यदत्त चरित्र' (गायकवाड सीरीज) की भूमिका देखो। अपभ्रंश में जैन साहित्य अपार है।

× जायसवाल, हिस्ट्री आव इण्डिया, (१५०-३५० ई०), पृ० ४५-४८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होती है। यह लोग बहादुर थे। जैनाचार्यों ने इन को आगे बढ़ने में मदद दी—वे सब जैनधर्मानुयायी अथवा बौद्ध हो गये। इन आदिवासी जातियों को दीक्षित करने के कारण बौद्धों और जैनों को ब्राह्मण लोग 'भ्रष्ट' अथवा 'चाण्डाल' कहने लगे थे; किन्तु जैनों ने इस आक्षेप की परवाह नहीं की। परिणामतः आभीर और भर जाति के वीर पुरुषों का अधिकार गंगा-यमुना के मध्यवर्ती प्रदेशों में जहाँ-तहाँ हो गया। उनके नाम अथवा बोली की अपेक्षा अनेक छोटे नगर और ग्राम प्रसिद्धि में आ गये, जो आज भी विद्यमान हैं। जिला एटा में भरपुरा, भरगैन, सहावर, सिरपुरा आदि पुरातन ग्राम भर एवं आभीर लोगों के अस्तित्व और उनकी बोली का आधिपत्य सूचित करते हैं। राजपूतों से पहले यहाँ ६ ठी से १२ वीं शताब्दि तक अहीर और भर लोगों का अधिकार जो रहा था।* उस समय भर लोग जिला एटा के अतिरिक्त मैनपुरी, इटावा, कानपुर, फतेहपुर और इलाहाबाद के जिलों और अवध के पश्चिमीय भाग में भी बलवान बने हुए थे।† जिला इटावा में आसी का दुर्ग उनका प्रधान केन्द्र था। कन्नौज पर आक्रमण करने के लिये मुसलमान बादशाहों को पहले आसी दुर्ग, जिसके खण्डहर आजकल आसईखेड़ा कहलाते हैं, के भारी से मोर्चा लेना पड़ता था। आसी दुर्ग अर्थात् वर्तमान का आसईखेड़ा सहेठ महेठ (श्रावस्ती) के समान ही जैनधर्म का केन्द्र रहा था। वहाँ आज भी इटावा के जैनी मुंडनादि संस्कार करने के लिये पहुँच जाते हैं। वहाँ अगणित जिनमूर्तियाँ बिखरी

---

* एटकिन्स्टन, स्टेटिस्टीकल डिस्क्रिप्टिव एण्ड हिस्टॉरीकल एकाउन्ट ऑफ दी एन० डबल्यू० पी० ऑफ इण्डिया, भाग ४ पृष्ठ ६८।

† पूर्व पुस्तक देखो। इटावा जिला मे भरथना, भरे आदि नाम के गाँव वहाँ भर राजाओं के आधिपत्य को प्रकट करते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पड़ी हैं, जिनमें से कुछ इटावा ले आई गई हैं।* लम्वकंचुक यदुवंशी जैनों में एक अल्ल 'कुँवर भरये' है, जो चन्दुवरिया गोत्र की सात सत्ताओं में से एक है।† चन्दुवरिया गोत्र की एक अन्य सत्ता 'असैया' है। अल्लें प्रायः किसी स्थान अथवा विशेष पुरुष या व्यवसाय के कारण अस्तित्व में आई हैं। आसईखेड़ा में (प्राचीन असी दुर्ग में) भर वंश के राजा राज्य करते थे। वल और दल उनके वीर पुरुष थे। मुहम्मद गोरी से उन्होंने मोरचा लिया था। सम्भव है इसी समय अथवा उसके कुछ समय पश्चात् वे राजभ्रष्ट हो गये हों। चूँकि वे जैनधर्मानुयायी थे, अतएव उनको लम्बकञ्चुक जैनों में 'कुँअर भरये' नाम से स्थान मिला प्रतीत होता है। 'कुँअर' शब्द उनके राज्याधिकार का ही द्योतक है। उपरान्त जब आसीनगर नितान्त नष्ट हो गया तो वहाँ के जैनी 'असैया' नाम की अल्ल से लम्वकञ्चुक जैनों में सम्मिलित हो गये। कुरुम्ब और भर जातियों के लोग मूलतः दक्षिणापथ के निवासी थे और उनको जैनाचार्यों ने जैनधर्म में दीक्षित किया था।‡

---

* सं० प्रा० के प्राचीन जैन स्मारक, पृ० ६२

† लंबेचू समाज का संक्षिप्त परिचय, पृ० ३७–३८

‡ ऑप्पर्ट, दी ओरीजिनल इनहैबीटेन्ट्स ऑफ इण्डिया (१८९३) पृ० ४१

"The Bhars.........embraced the different creeds...... but Buddhism and Jainism were naturally more popular."—P. 46.

"The Buddhist and Jaina missionaries were probably the first preachers and religious teachers, who devoted themselves to the indigenous population and who succeeded in their efforts to win by their sympathy the affection of the masses."—P. 100.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुरुम्ब दक्षिण भारत में जाकर जैनों के सहयोग से शासनाधिकारी हुए❀ और भर उत्तर भारत में आकर राजसत्ता का भोग करने लगे। उन्होंने अपना सम्बन्ध द्वारिका के यादवों से माना था, इसलिये भर-वंश के राजा उपरान्त लम्बकञ्चुक जैनों में सम्मिलित हो गये, क्योंकि वे भी यदुवंशी हैं। आसी-दुर्ग के इन भर-राजाओं को अन्य राजपूत इसी कारण हीनदृष्टि से देखते थे कि वे दाक्षिणात्य थे और जैनधर्म में उनकी दृढ़ श्रद्धा थी। राजपूत उनको 'चाण्डाल-भार' कहते थे।× उस समय के पहले से जैन राजधर्म नहीं रहा था और शैवों के प्रावल्य से साम्प्रदायिक स्पर्द्धा के वश हो ब्राह्मण लेखकों ने जैनों को ओछे नाम से पुकारा था†। जैन श्राद्ध-तर्पण स्वर्ण-दान आदि वैदिक संस्कार जो नहीं करते थे।

ऐसा प्रतीत होता है कि मध्यप्रान्त के पर्वतीय प्रदेश से चलकर यह भर लोग गंगा-यमुना के मध्यवर्ती सारे प्रदेश में फैल गये थे। जैसे-जैसे भर आगे बढ़ते गये, वैसे-वैसे अपने दुर्ग और नगर बसाते गये। मिर्जापुर और विन्ध्याचल के बीच में उनका कन्तित् (प्राचीन कान्तीपुरी) नामक दुर्ग प्रसिद्ध

❀ The Original Inhabitants of India, P. 220—260.

× "Another suggestion would identify the Chandal Bhar, ruler of Asi, with a prince of the Bhar tribe, who are considered chandals or outcastes by the Rajputs of N. W. India and the name then should therefore be written Chandal Bhar."—Oppert, loc. cited., P. 363.

† प्राचीमाहात्म्य आदि ग्रन्थों में 'चाण्डाल' नाम से बौद्धों और जैनों का उल्लेख हुआ बताया जाता है। देखो जर्नल आँव दी विहार एण्ड ओड़ीसा रिसर्च सोसाइटी, भाग १६ पृ० १६१-२०२।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

था।* उधर से वह बढ़कर गोंडा, वहराइच जिलों में भी फैल गये। विद्वानों का अनुमान है कि यूनानी लेखक टोल्मी (Ptolemy VII, 2, 29) ने वर्रहै (Barrhai) नाम से भर जाति (Bhars) के लोगों का ही उल्लेख किया था। मुसलमानों के भारत आक्रमण के समय इन भर-वंश के राजाओं का शासनाधिकार अवध से विहार तक और दक्षिण में छोटा नागपुर, बुन्देलखण्ड एवं सागर जिलों में फैला हुआ था। अवध में वार, बाराबंकी आदि नगरों की स्थापना भर-वंश के राजाओं द्वारा हुई थी। + भर-वंश के विजेता अवध भर में फैल जो गये थे।

---

* आर्केलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, भाग २१ पृष्ठ १०८।

+ "Ptotemy (VII, 2, 20) Bhars are called Barrhai." P. 37.

"Legend associates their (Bhars') name with the earliest Aryan heroes, e.g., with Rama and his sons, but the Bhars suddenly disappear from the scene, and, so far as history is concerned, reappear just previously to the Mohammadan invasion on India, at which period they certainly possessed a vast territory, and were indeed the real owners of the soil. In fact the Bhars must have once ruled over a great area of country stretching from Oudh in the west to Bihar in the east and Chota Nagpur, Bundelkhand and Sagar in the South. Bara in Oudh is said to have been founded by a Bhar Raja called Bara. While the foundation of Barabanki is associated, with Jas, another Bhar Raja.

—Oppert, Loc. cited., P. 39

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अवध के दूसरे भागों की तरह जिला परतावगढ़ (प्रताप-गढ़) के राज्यधिकारी भी भार लोग हुये थे; जिनको राजधानी सई नदी के पास हिन्दौर में थी। लखनसर के राजपूतों ने इन भार-राजाओं को हराया था।× जिला सुलतानपुर में भी मुसलमानों के आक्रमण के पहले भार लोग रहते थे, जो कन्नौज के राजपूत राजा के आधीन थे। सन् ११९२ ई० में जब जयचन्द का पतन हो गया, तो उसके पश्चात् भी भार राजा इस जिले में स्वाधीन होकर शासन करते रहे। राजपूत और मुसलमान, दोनों ही इनसे घृणा करते थे। फिर भी अपने साहस और धर्माचरण के कारण वे सम्मान को पाते थे। जहाँ-जहाँ आज पुराने खेड़े हैं, वहाँ-वहाँ पहले इन वीर बांकुरे भार लोगों के दुर्ग शोभते थे।÷ गोमती के बांयें किनारे पर अवस्थित अल्देपुर में भारों का प्रसिद्ध दुर्ग था।❀ भार सरदार वीर और कौतूहली होते थे और देश भक्त भी। एक बार एक मुसलमान सैयद सौदागर के घोड़े उन्होंने छीन लिये। अलाउद्दीन इससे चिढ़ गया और उसने अवध पर चढ़ाई करदी, किन्तु भार वीरों के सम्मुख उसकी सेना टिक न सकी। अलाउद्दीन ने संधि करना चाही और चालाकी से पालकियों में बिठाकर अपने सिपाहियों को किले में पहुँचा दिया धोखे से किले पर अधिकार कर लिया। भार सरदार हार गये।+ अलाउद्दीन ने इसी समय श्रावस्ती के भार राजाओं को परास्त करके वहां के जैन मन्दिर को नष्ट किया था।

× "भूगोल"—संयुक्तप्रान्ताङ्क—पृष्ठ २७४

÷ " " " २८२।

❀ " " " २८४।

\+ " " " २८६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उन्नाव जिले के अधिकांश भाग तथा रायबरेली जिले में भी भर-वंश के शासकों का प्रावल्य रहा था।❀ लखनऊ जिले में भर लोग बहुत आगे बढ़े हुये थे। उन्होंने दुर्ग बनाकर अपने को शक्तिशाली बना लिया था। अमेठी में उनका मुख्य राज-केन्द्र स्थापित हुआ था, परन्तु मुहम्मद ग़ज़नवी के भतीजे ने उनको परास्त कर दिया था। लखनऊ जिले में अमेठी के अतिरिक्त जुगौर, बिजनौर आदि स्थान भार सरदारों के केन्द्र थे।‡ काकोरगढ़ (काकारो) भार लोगों का एक सुदृढ़ दुर्ग था।× कहते हैं कि मुसलमानों के आक्रमण से लगभग ६०० वर्ष पूर्व जस नामक एक भार सरदार ने बाराबंकी को बसाया था। उसके बारह बांक (भाग) किये गये थे, इसीलिए वह बारह बंकी कहलाई। इन बारह भागों के लिये बारह बांके-वीर परस्पर लड़े थे, यह भी किम्वदन्ती है।+ जब मुसलमानों ने हिन्दुओं को पराजित करके अवध में अपनी सत्ता स्थापित की, तो भार वंश के देशभक्त वीरों को यह दासता असह्य हुई। उन्होंने एक संगठन किया और मर्यादा पुरुषोत्तम भ० रामचन्द्र जी की राजधानी अयोध्या में सभी हिन्दू वीर इकट्ठे हुये। उन्होंने मुसलमानों के विरुद्ध विद्रोह की आग देश में भड़का दी। कहते हैं, इस विद्रोह में १२०००० मुसलमान काम आये थे। किन्तु शाही फौज ने इस विद्रोह को दबा दिया।+ हिन्दुओं ने आपसी फूट और विश्वासघात का जो

❀ "भूगोल"—संयुक्तप्रान्ताङ्क, पृष्ठ २१६

‡ ,, ,, ,, २०८—२१२

× ,, ,, ,, २१९

+ ,, ,, ,, २२६

+ ,, ,, ,, २३१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बुरा बीज बोया था, उसके घातक फल से वह कैसे बच सकते थे ?

जिला गोरखपुर में भी भर-राजाओं का प्राबल्य रहा था।‡ अयोध्या के कौशिक वंश के राजाओं ने जिला गोरखपुर के अन्तर्गत रुद्रपुर नामक नगर बसाया था। भार राजा ने उस पर अधिकार कर लिया था। भारों के इस रुद्रपुर में आज भी जैनों के अन्तिम तीर्थङ्कर भ० महावीर की मूर्ति उपलब्ध है।❀ भार राजनगरों के अवशेषों में प्रायः जैन मूर्तियाँ मिलती हैं। भार-शासन काल में जैनधर्म उन्नतिशील रहा था—उसे अपना खोया हुआ राजाश्रय मिला था। जि़ला आज़मगढ़ के महुल परगने में दिहद्वार नामक स्थान असिलदेव नामक भार नरेश का केन्द्र स्थान था। अयोध्याराय नामक राजा ने अपनी राजधानी का नाम भार-अरांव (भरांव अथवा भदांव) रक्खा था। ×पवई राज के अधिकारी भी भर लोग थे।÷ हरदोई जि़ला बहुत समय तक भारों की राजनैतिक शक्ति-प्रसार का केन्द्र बना रहा। सारांश यह है कि सारे अवध और आगरा प्रान्त के बहुभाग में भार वंश के राजा शासनाधिकारी हो रहे थे। इन सब राजाओं में बहराइच का भार वंश प्रमुख था। सहेठ महेठ (श्रावस्ती), अशोकपुर, दोगांव, जरौली (जरवल) आदि स्थानों में भार लोगों की बस्तियाँ और दुर्ग थे।+ बहरायच अथवा श्रावस्ती के भार-राजा लोग स्वाधीन

---

‡ "भूगोल"—संयुक्त प्रान्ताङ्क, पृष्ठ ३७९
❀ " " " ३६०
× " " " ३६७
÷ " " " ४०४
+ " " " ३५७—३६२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शासनाधिकारी थे। इसी वंश के राजा त्रिलोकचन्द्र ने सन् ६१८ में दिल्ली के विक्रमपाल को परास्त करके समस्त अवध पर अपना अधिकार जमा लिया था।❀ जनरल कनिंघम ने इन भार राजाओं की वंशावली का उल्लेख निम्न प्रकार किया है :—×

१—मोरध्वज	अथवा	मयूरध्वज	सन्	६०० ई०
२—हंसधज	अथवा	हंसध्वज	,,	६२५ ,,
३—मकरधज	,,	मकरध्वज	,,	६५० ,,
४—सुधन्वाध्वज			,,	६७५ ,,
५—सुहिलदलधज अथवा सुहृद्ध्वज			,,	१००० ,,

इस वंशावली के अनुसार इस भार-राजवंश के आदि पुरुष मोर अथवा मयूरध्वज थे; किन्तु पहले यह लिखा गया है कि सन् ६१८ में त्रिलोकचन्द्र ने भारों के स्वाधीन राज्य की स्थापना की थी। हो सकता है कि मयूरध्वज का विरुद त्रिलोकचन्द्र हो। जिस वीर ने भार लोगों को स्वाधीन सत्ताधिकारी बनाया, वह यदि 'त्रिलोकचन्द्र' नाम से प्रसिद्ध हुआ हो, तो कोई आश्चर्य नहीं। कनिंघम सा० ने जो राजकाल निर्धारित किया है, वह अनुमानित है। निश्चित इतना ही है कि सुहिल देव (सुहृद्ध्वज) महमूद के समसामयिक राजपुरुष थे। इस वंश में मयूरध्वज के उपरान्त सुहृद्ध्वज ही एक प्रसिद्ध और पराक्रमी राजा हुए थे। मयूरध्वज के समान ही उनका नाम भी देश में दूर-दूर तक फैल गया था। मयूरध्वज के नाम से

❀ "भूगोल"—संयुक्त प्रान्ताङ्क, पृष्ठ ३०८

× आर्केऑलॉजीकल सर्वे ऑफ इन्डिया, भाग १, पृष्ठ ३२६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रोहिलखंड* और जिला विजनौर + में भी कई दुर्ग मिलते हैं। इस प्रकार मुसलमानों के आक्रमण के समय अवध और आगरा प्रान्त के बहुभाग पर भार अथवा भर वंश के राजा ही शासनाधिकारी थे। इन भर राजाओं में अधिकांश जैन अथवा बौद्ध थे। इसी कारण किन्हीं लेखकों का अनुमान है कि जैन होने के कारण वे अहिंसा-धर्म के मानने में ऐसे कट्टर थे कि मुसलमान आततायियों से सफल मुकाबिला नहीं ले सके। किन्तु यह अनुमान निराधार है। उत्तर भारत ही नहीं, दक्षिण भारत में भी विजयनगर के हिन्दू सम्राटों ने जब मुसलमानों से मोरचा लिया तो वैचप्प आदि अनेक जैन सेनापतियों ने बहादुरी से युद्ध में भाग लिया था। + एक श्रावक (गृहस्थ जैन) विरोधी हिंसा का त्यागी नहीं होता। अतः वह विरोधियों से धर्म और देश की रक्षा के लिये लड़ना अपना कर्तव्य मानता है। भर राजा जैन होते हुये भी वीरता के साथ मुसलमानों से लड़े थे।

---

* आर्केऑलॉजीकल सर्वे ऑफ इण्डिया, भाग १ पृष्ठ ३२० फु. नोट

\+ "भूगोल"—संयुक्त प्रान्ताङ्क पृष्ठ १७

\+ हमारा "संक्षिप्त जैन इतिहास" (सूरत) भा० ३ खंड ५ देखो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वीरवर सुहिलदेव और सय्यद सालार मसऊद

"......Their country (India) has never been conquered by any foreign king......no one among them (Indians) shall, under any circumstances be a slave, but that, enjoying freedom, they shall respect the equal right to it which all possess."*

—Megasthenes.

सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य के राजदरबार में यूनान से मेगास्थनीज नामक राजदूत आया था और वह भारत में कई वर्षों तक रहा था। उसने भारत का आँखों देखा वर्णन लिखा था। उस वर्णन में उसने बताया है कि सिकन्दर के पहले भारत को किसी विदेशी राजा ने पराभूत नहीं किया था। भारतीय किसी भी अवस्था में दास होकर रहना पसन्द नहीं करते; अपितु वे स्वयं स्वाधीन रहते हैं और अपने आधीन हुये लोगों को भी बराबरी का सम्मान और स्वत्व प्रदान करते हैं। यह था भारत के राष्ट्रीय चारित्र्य का समुन्नत स्तर और मापदण्ड। आज के स्वाधीन भारत में हमें अपने इस खोये हुये राष्ट्रीय-चरित्र को पुनः प्राप्त करना है। भारतीय अपनी इस निधि को खोकर ही पराभूत हुये थे। सिकन्दर के समय में क्षत्रिय वीर पारस्परिक स्पर्द्धा, अनैक्य और स्वार्थ में बहक कर अपने राष्ट्रधर्म को भूल गये थे। किन्तु महा शक्तिशाली

* मैकक्रिंडल इण्डिया (१८७७) पृष्ठ ३३ व ४० ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मौर्य चन्द्रगुप्त ने उनको सन्मार्ग दिखाया था—देश पूर्ण स्वतन्त्र और संगठित हो गया था। अहिंसा संस्कृति के विकास से भारत का नाम दूर-दूर देशों में प्रसिद्ध हुआ था। किन्तु सबके दिन सदा एकसे नहीं रहते। प्रकृति चक्र में प्रकाश और अन्धकार दोनों का ही आगमन लगा हुआ है। अभ्युदय में अवसान छिपा हुआ है। भारत के राष्ट्रीय प्राङ्गण में भी उत्थान और अवसान के चक्र-दृश्य घटित हुये। मध्यकाल के अन्तिमपाद में राजपूतों के वैमनस्य और घमंड ने मुसलमानों को एक अवसर दिया कि वे भारत पर अधिकार जमालें। चौहान राजा पृथ्वीराज और गाहड़वाल नरेश जयचन्द के मनोमालिन्य ने ही मुहम्मद को भारत के इस छोर से उस छोर तक पूर्व-पच्छिम में नादिरशाही मचाने का साहस दिया। वीर बाँकुरे भरवंश के राजा सुहिलदेव को यह असह्य हुआ कि उनके देश पर विदेशियों का शासन चक्र चले और स्वाधीन भारत दासता की शृङ्खला में जकड़ जाये! सुहिलदेव ने यह सुना कि मुहम्मद का सेनापति सैयद सालार हिन्दू राजाओं में तोड़फोड़ और फूट पैदा करता हुआ आगे बढ़ रहा है। गाहड़वालों की पराजय के बाद हिन्दू अपने वैयक्तिक अभ्युदय के लोभ का संवरण न कर सके और मुसलमानों का साथ देकर वे अपने ही भाइयों से लड़ते आ रहे थे। वीर सुहिल क्षोभ, क्रोध और परिताप से जलने लगे। उन्होंने निश्चय किया कि उनके जीवित रहते भारत माँ की पवित्र भूमि अवध पर विदेशियों का अधिकार नहीं हो सकता। किसी भी देश-प्रेमी हिन्दू को यह सहन नहीं हो सकता कि वह अपनी स्वाधीनता को गँवा दे। सैयद सालार ज्यों ही अवध के द्वार पर पहुँचा कि राय रायेत, राय सायेत, अर्जुन, भोखन, कनक, कल्याण, नगरू, सगरू, कर्ण, बीरबल, अजयपाल,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीपाल, हरपाल, हरखू, नरखू रजूधारि, देउनारायण और बरसिंह नामक हिन्दू राजाओं ने संयुक्त मोर्चा लगाया और मुसलमानों को कहला भेजा कि वे उनके देश को छोड़ जावें उनको दूसरे लोगों की मातृभूमि पर लुटेरों के समान आक्रमण करने का कोई अधिकार नहीं है। हिन्दू राजा किसी के देश और सम्पत्ति को लूटना नहीं चाहते और न वे अकारण रक्त-पात करना उचित समझते हैं। अतएव मुसलमानों को चुप-चाप उनका देश छोड़कर वापस चला जाना चाहिये। किन्तु हिन्दू राजाओं की इस चेतावनी का उल्टा ही परिणाम हुआ। सैयद सलार मसूद को अपनी फौज पर उतना भरोसा चाहे न रहा हो परन्तु हिन्दुओं की कमजोरी से वह अच्छी तरह परिचित था। उसने हिन्दुओं पर आक्रमण कर दिया और यह चाल चली कि अपनी फौज़ के आगे गउवों के झुण्ड कर लिये। हिन्दू वीर गऊ को माता तुल्य मानता है—वह इन पर कैसे प्रहार करे। मुसलमानों को आगे बढ़ने का मौका मिल गया। कुटिल नदी के किनारे पर घमासान युद्ध हुआ; किन्तु मालूम यह होता है कि जिस समय हिन्दू सरदार गउवों के कारण असमंजस में पड़े हुये मंत्रणा कर रहे थे, उस समय मुसलमानों ने उनको चारों तरफ से घेर कर आक्रमण कर दिया। हिन्दू सेना में इन आक्रमणों से भगदड़ मच गई। हिन्दू हार गये। उनमें से बहुतेरों ने मुसलमानों का आधिपत्य स्वीकार कर लिया। सैयद सालार कूटनीतिज्ञ भी था। उसने पराजित हिन्दुओं का जो उसकी शरण आये, बड़ा सम्मान किया। उन्हें राजत्व का लोभ भी दिया। अपने निजी लाभ में यह अहीर और दूसरे सरदार भूल गये कि 'पराधीन सपनेहु सुख नाहीं।' यही नहीं, वह मुसलमानों के साथ कंधा से कन्धा भिड़ाकर लड़ने को भी तत्पर हो गये। राष्ट्रीय-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चारित्र्य को हिन्दू जातिगत उच्चता-नीचता के मद में पहले ही गँवा चुके थे। भर वंश के वीरों से उनकी पटती भी न थी।

वीर वर सुहिलदेव ने यह सब कुछ सुना। संवलौत से उनके निकट राय भरदेव भी आ गये। सुहिलदेव के चारों भाई भी इकट्ठे हुये। उनके नाम रुद्रमल, वागमल, बहरमल और सहरमल बताये गये हैं। इन सबने मिलकर मंत्रणा की और सबने भीष्म प्रतिज्ञा की कि वे प्राण रहते हुये कभी भी यवनों को आगे नहीं बढ़ने देंगे। जैन गुरुओं से उन्होंने अहिंसा का स्वरूप समझा था और विवेक को अपनाया था। उनके निकट गाय और शेष पशुओं के प्राणों का मूल्य समान था। उनका अभिप्राय गउवों की हिंसा करना नहीं था—वह तो आतताई को दण्ड देने के लिये—अपने देश और धर्म की रक्षा के लिए युद्ध क्षेत्र में अवतरित हुये थे। उन्होंने अहीरों के नेता नन्द-महर और हरपालसिंह के पास भी सूचना भेजी और उनसे आशा की कि वे भी उनके साथ यवनों से लड़ने आवें; किन्तु अहीर सरदारों पर सालार की कूटनीति का रंग चढ़ चुका था। उन्होंने अपने देश-भाइयों के निमन्त्रण को ठुकरा दिया और सालार मसूद के विवाह में सम्मिलित होने के लिये चल दिये। वीरवर सुहिलदेव और उनके अन्य वीर साथियों के लिये यह उत्तर असह्य था। उन्होंने विलम्ब करना अनुचित समझा। पहले वह अहीरों से जूझ पड़े और उनसे गाय-भैंस छीन लाये, जिनको उन्होंने सालार की शादी के लिये रख छोड़ा था।

सालार मसूद ने जब यह सुना तो वह शादी की बात भूल गया और एक दम अपनी सेना को उसने सँभाला। अहीरों और दूसरे हिन्दुओं को भी उसने साथ लिया। अपना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुरानी चाल को उसने फिर दुहराया—गउवों को आगे रखकर वह युद्ध क्षेत्र के लिये चल पड़ा।‡

वीरबल सुहलदेव और उसके साथी सरदारों की सेना पहले से ही इस आक्रमण का मुकाबला करने को तैयार थी। सुहिलदेव जिनमन्दिर में गये और अपने इष्टदेव तीर्थङ्कर संभवनाथ की दिव्यमूर्ति के दर्शन किये।× देश और धर्म की रक्षा के लिये उन्होंने प्रण किया कि वह अत्याचारियों को देश से निकालकर ही जिनेन्द्र के दर्शन करेंगे; या वीरगति को प्राप्त होंगे। उनकी प्रतिज्ञा को सभी सैनिकों ने दुहराया। 'महावीर की जय' घोषणा के साथ उन्होंने दूर से ही गउवों के झुण्ड पर तीर चलाकर उनको तितर-बितर कर दिया। मुसलमानों की सेना में अव्यवस्था फैल गई। वीरवर सुहिलदेव की सेना ने उससे लाभ उठाया और उनका आक्रमण सफल हुआ। कई दिनों तक घोर युद्ध हुआ और मुसलमानों के कई योद्धा इस युद्ध में काम आये। स्वयं सालार मसूद भी इस युद्ध में खेत रहा। वीरवर सुहिलदेव का प्रण पूरा हुआ। उन्होंने भारत मां की पवित्र भूमि का स्वाधीन-ध्वज ऊँचा रक्खा किन्तु आश्चर्य

‡ मसऊद के हमले के साथ गउवों का एक समूह हरावल में रहता था, जिससे हिन्दू अपना वार करने में असमर्थ रहते थे और शत्रु सुगमता से विजयी हो जाते थे; परन्तु सुहलदेव ने उन गायों की किञ्चित भी परवा न की।" —"सरस्वती", भा० ३४ सं० १ पृ० ३३

× दिल्ली के नथमल नामक कवि ने 'जंगनामा' कविता में इस युद्ध का वर्णन लिखा था; किन्तु उन्होंने सालार मसऊद और अलाउद्दीन के आक्रमणों की घटनाओं को मिलाकर लिखा है। इसका अंग्रेजी अनुवाद डब्ल्यू० होय सा० ने प्रकाशित किया था; जिसमें लिखा है:—

"Then Hindus clashed with Muslims, while their

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वीरवर सुहलदेवराय अपने भाइयों के साथ श्रावस्ती तीर्थ और देश की रक्षा के लिए सैयद सालार से युद्ध करने को चल दिये। (पृष्ठ ६२)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है कि किसी भी हिन्दू, जैन अथवा वैष्णव लेखक ने इस युद्ध का वर्णन नहीं लिखा। इस उपेक्षा का कारण यही हो सकता है कि उस समय मुसलमानों के आक्रमणों के कारण कोई ऐसा लेखक ही न जन्मा जो भारतीय वीरों की शौर्य-गाथा को छन्द-बद्ध कर देता। जनता चन्देल वीरों आल्हा-ऊदल की वीरगाथा गाकर ही सन्तोष कर लेती रही।

अलबत्ता मुसलमान लेखकों ने इस युद्ध का वर्णन लिखा है। उन्होंने जो कुछ लिखा वह अपने दृष्टिकोण से, अतएव वह अतिरञ्जित वर्णन है। मुल्ला मुहम्मद गज़नवी नामक लेखक सालार मसऊद की सेना के साथ था। उसने 'तवारीखे मुहम्मदी' नामक एक पुस्तक लिखी थी, जो सम्भवतः अप्राप्त है उस तवारीख के आधार से जहांगीर के शासनकाल में अब्दुर्रहमान चिश्ती ने 'मीराते मसऊदी' में इस युद्ध की घटना का उल्लेख किया।❀ उसमें लिखा है कि "मसऊद की सेना बहरायच में १७ वीं शावान को ४२३ हिजरी (सन् १०३३) में पहुँची थी और कोसल (कौड़ियाला) के निकट उसने हिन्दुओं को परास्त किया था। इसके बाद सुहलदेव ने युद्ध का संचालन अपने हाथ में लेकर मुसलमानों का मुँह मोड़ा। मुसलमान हार कर भाग खड़े हुए। सुहलदेव ने उन्हें उनके पड़ाव बहरायच में आ घेरा। यहाँ मसऊद रज्जबुल मुरज्जक १८ वीं तारीख को ४२४ हिजरी में (सन् १०३४ ई०) अपनी

---

king (Suhil) on Somnath (Sombhavanath) calls." Journal of the Asiatic Soc. Bengal 1892. P. 34

❀ होय सा० ने लिखा है कि 'मीराते मसऊदी' फारसी किताब का अनुवाद है। मूल फारसी किताब का नाम 'सौलाते मसऊदी' है।'

—सरस्वती, भा० ३४ सं० १ पृ० ३०-३१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सारी सेना सहित मारा गया।" फारसी तवारीख में इसका उल्लेख इस प्रकार है:—

"निज्द दरियाय कुटिला जेर दरख्ताँ गुलचिकाँ
व जर्बे नावक् हम चूँ मी जान शहीद सुदन्द।"

अर्थात्—'कुटिला नदी के किनारे महुए के वृक्ष के नीचे एक तीक्ष्ण बाण के लगने से सैयद सालार का जीवन-प्रदीप बुझ गया।' यह स्थान बहरायच से ८ मील पूर्व-दक्षिण है, जहाँ वीर केसरी सुहिलदेव ने शत्रुपक्ष को बड़ी वीरता से परास्त किया था। इस युद्ध में न केवल सैयद सालार मसऊद ही खेत रहे; बल्कि उनकी सहायता के लिये जो बड़े-बड़े योद्धा आये थे, वे भी परलोक सिंधारे। बहरायच के सैयद सैफुद्दीन महोबा के मीरहसन, गोयामऊ के सय्यद अजीजउद्दीन. लखनऊ के मलिक आदम, कड़ा मानिकपुर के सय्यद इब्राहीम, बनारस के मलिक फैज और सालार के साथी सिकन्दर बरहना की इहलीला इसी युद्ध में समाप्त हुई थी।* इन मुसलमान योद्धाओं के मारे जाने से सदैव के लिये भारत में मुसलमानों की जहादी प्रकृति का अन्त हो गया। निस्सन्देह सुहिलदेव की इस विजय के फलस्वरूप मुसलमानों की अजेयता का आतङ्क अवध से जाता रहा। उनकी यह विजय साधारण न थी। इस विजय को उन्होंने किसी साधारण मुसलमान योद्धा को परास्त करके प्राप्त नहीं किया। प्रत्युत महमूद जैसे

---

* इस युद्ध का विशेष वर्णन जानने के लिये फारसी की किताबें 'सौलाते मसऊदी'—'तवारीख सुबुक्तगीन' आदि देखना चाहिये तथा 'जनरल ऐशियाटिक सोसाइटी ऑव बंगाल का विशेषांक (१८६२) तथा जनरल ऐशियाटिक सोसाइटी बम्बई १८६२ स्पेशल नम्बर भी पढ़ना चाहिए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भारत विजयी सुल्तान के भानजे को जो एक वीर सेनापति का पुत्र था, उस सैयद सालार को पछाड़ कर प्राप्त की, जो तब तक बराबर हिन्दुओं को परास्त करता चला आ रहा था। वह बालार्क तीर्थ अर्थात् सूर्यकुण्ड को भ्रष्ट करना चाहता था; किन्तु सुहलदेव जैसे पराक्रमी राजपूत-राजा ने उसे तलवार के घाट उतार कर अपने देश और धर्म-तीर्थ की रक्षा की।

'सुष्ट की रक्षा और दुष्ट का निग्रह करना'—भारतीय नरेशों का मुख्य धर्म रहा है। जैनाचार्यों ने राजनीति के इस सिद्धान्त की प्रतिपालना का पूरा ध्यान रखकर जैन वीरों को धर्म और देश की रक्षा करने के लिये पद-पद पर प्रोत्साहित किया है। उनका यह कार्य दयाभाव का ही परिणाम माना गया है। (दीनाभ्युद्धरणे बुद्धिः कारुण्यं करुणात्मनाम् ।') जैनाचार्य स्पष्ट कहते हैं कि "जो व्यक्ति रणांगण में युद्ध करने के लिये सन्मुख हों अथवा अपने देश के कंटक—उसकी उन्नति में बाधक हों, क्षत्रिय वीर उन्हीं के ऊपर शस्त्र उठाते हैं,—दीन, हीन और साधु आशय व्यक्तियों के प्रति वे शस्त्र प्रयोग नहीं करते"।* वीरवर सुहलदेव ने अपने शौर्य द्वारा जैनाचार्य की इस उक्ति को चरितार्थ किया था। धन्य और महान् थे वे।

———

* यशस्तिलक चम्पू पृष्ठ ९९।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राजा सुहिलदेव और जैनधर्म

श्री बेनेट (Mr. Bennett) ने लिखा है कि "राजा सुहिलदेव और उसके वंश के नरेश जैन धर्मानुयायी थे। डॉ० विन्सियेंटस्मिथ भी यही लिखते हैं कि राजा सुहिलदेवराय जैन थे।"*

सैयद सालार मसऊद और उनके साथियों को परास्त करके वीरवर सुहिलदेवराय ने हिन्दू जनता पर आये हुये संकट के बड़े तूफ़ान को छिन्न-भिन्न कर दिया। इस युद्ध के पश्चात् न केवल श्रावस्ती निष्कण्टक हो गई, प्रत्युत समूचा अवध प्रान्त स्वाधीन हो गया। सबने ही सुहिलदेवराय का समुचित सम्मान किया और उनकी सत्ता को दूर-दूर के नरेश भी स्वीकार करने लगे।

इस घटना के पश्चात् सुहिलदेवराय शान्तिपूर्वक धर्म की अराधना करते हुए राजकाज करने लगे थे। उन्होंने श्रावस्ती में भ० संभवनाथ की मूर्ति के समक्ष जो प्रण किया था, उसको उन्होंने पूरा कर दिखाया। शताब्दियों पहले कलिंग के चक्रवर्ती जैन सम्राट् महामेघवाहन खारवेल ने भी एक ऐसा ही प्रण किया था और उनके आतंक से भयभीत हो यवन नृप दिमत्रय (Demetrios) मथुरा को छोड़कर भाग गया था;

---

* अवध गैजेटियर, भाग ३ पृ० २८३ और जनरल ऑफ दी एशयाटिक सोसाइटी, सन् १६००, प्र० १।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जबकि वह कोसल की ओर बढ़ने के मंसूबे बाँध रहा था। खारवेल ने दिग्विजय से लौट कर महोत्सव मनाया था। आश्चर्य है कि सुहिलदेवराय के समान ही खारवेल का उल्लेख भी किसी भारतीय लेखक ने नहीं किया। खारवेल की कीर्ति हाथीगुफा के प्रसिद्ध शिलालेख में सुरक्षित है। किन्तु ये दोनों ही वीर जैन धर्म के स्तम्भ और भारत के स्वाधीनता संग्राम के अग्रणी थे। खारवेल के अनुरूप ही विजयी वीर सुहिलदेव ने भी विजयोत्सव मनाया हो तो आश्चर्य क्या? एक जैन-नृप के समान ही उन्होंने अमारी घोषणा करके सबको अभयदान दिया—विद्वानों का सत्कार किया और जैन धर्मायतनों को समुन्नत बनाया, ऐसा करना उनके लिये स्वाभाविक था।

जैनधर्म की मान्यता उनके वंश में पहले से चली आ रही थी। उनके वंश के आदि पुरुष मयूरध्वज अथवा त्रिलोकचन्द्र एक पराक्रमी नरेश थे। श्रावस्ती से दूर पश्चिम में रुहेलखण्ड के अहिच्छत्र नगर में भी उनका शासन था और उनके नाम का दुर्ग जिला बिजनौर में भी है। इन दोनों स्थानों में भी मयूरध्वज जैन राजा के नाम से प्रसिद्ध है।‡ त्रिलोकचन्द्र फैज़ाबाद (अयोध्या) के जैन राजा बताये गये हैं।× सारांश यह कि सुहिलदेवराय के पूर्वज बड़े पराक्रमी और जैन धर्मानुयायी शासक थे। किन्तु एक विद्वान् का यह अनुमान है कि इस वंश के चौथे शासक सुधन्वा अथवा सुधन्वध्वज जब श्रावस्ती में शासन कर रहे थे, तब श्री शङ्कराचार्य ने उनके राज दरबार में जैन विद्वानों को शास्त्रार्थ में परास्त किया और उनको अपने मत का अनुयायी बनाया। इस घटना के

‡ संयुक्त प्रान्त के प्राचीन जैन स्मारक, पृष्ठ ८०-८१
× ,, ,, ,, ,, ७०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पश्चात् इस वंश के सभी राजा शङ्कर-मत के अनुयायी हो गये।* किन्तु इस प्रकार की कोई घटना श्रावस्ती के नरेश और सुहिलदेव के पूर्वज राजा सुधन्व के राज दरबार में कभी घटित ही नहीं हुई। श्री शङ्कराचार्य जी धार्मिक दिग्विजय के प्रसंग में कोसल आये अवश्य, परन्तु उन्होंने श्रावस्ती के जैन-धर्मानुयायी राजा सुधन्व को अपने मत में दीक्षित किया हो, ऐसा कोई उल्लेख 'शङ्करदिग्विजय' नामक ग्रन्थ में नहीं है।† वास्तव में श्री शङ्कराचार्य ने अपनी धर्मचर्या का केन्द्र उस समय भारत की प्रसिद्ध राजधानी उज्जैन में रक्खा था और वहीं से वह दक्षिण, पश्चिम और पूर्व की ओर दिग्विजय के लिये गये थे। एक दिशा की ओर घूम आने पर वह उज्जैन लौट आते थे।‡ ऐसा करना उनके लिये ठीक भी था। उज्जैन उस समय भारत का राजकेन्द्र होने के साथ ही विश्व प्रख्यात् नगर हो रहा था। श्रावस्ती का महत्व उसके समकक्ष में नगण्य था। उज्जैन में उस समय जो नरेश शासनाधिकारी थे, उनका नाम भी सुधन्व था। इस नाम-साम्य के कारण ही यह भ्रम हुआ और विद्वान् गलती से समझ बैठे कि श्रावस्ती का सुधन्व श्री शङ्कराचार्य का परम भक्त और शिष्य हो गया

---

* 'सरस्वती"—भाग ३४, सं० १, पृ० ५२-५३

† 'निजशिष्यपदं गतानुदीच्यानिति कृत्वाऽथ विदेहकोशलाद्यैः।
विहितापचितिस्तथाऽङ्गवङ्गेष्वयमास्तीर्य यशोजगाम गौडान् ॥१६१॥
अभिभूय मुरारिमिश्रवर्यं सहसा चोदयनं विजित्य वादे।
अवधूय च धर्मगुप्तमिश्रं स्वयशः प्रौढमगापयत्स गौडान् ॥१६२॥
—श्रीमच्छंकर दिग्विजय (आनन्दाश्रम) पृ० ५७५, सर्ग २५
गौड देश में मुरारि मिश्रादि पर वाद में विजय पाने का उल्लेख है।

‡ श्रीमच्छंकर दिग्विजय का २५ वाँ सर्ग देखो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

था। वास्तव में श्री शङ्कराचार्य का परम भक्त और शिष्य उज्जैन (अमरावती) का नरेश सुधन्वा हुआ था।❀ उज्जैन में ही शंकराचार्य जी ने जैनों से शास्त्रार्थ किया था × और जैनों के साथ उनका दूसरा शास्त्रार्थ बाल्हीक नामक देश में हुआ था। + इनके अतिरिक्त 'शङ्करदिग्विजय' में और कोई उल्लेख नहीं है जिसमें जैनों का प्रसंग वर्णित हो। अतएव यह मान्यता निराधार है कि श्रावस्ती के सुधन्वध्वज नरेश ने जैनधर्म में श्रद्धा खो दी थी; प्रत्युत सत्य तो यह है कि स्वयं सुधन्व और उनके वंशज सुहिलदेवराय, जिनका सांस्कृतिक नाम सुहृद्ध्वज था, एवं अन्य राजा अन्त तक जैन धर्मानुयायी रहे थे।

कहा जाता है कि सुहिलदेवराय पाटन अथवा पट्टनो देवी के भी भक्त थे। यह उनकी कुल-देवता थीं। जैनों में इन देवी

❀ 'भविष्यति महेन्द्रोऽपि सुधन्वा नाम भूमिपः ॥ ९६ ॥ १ ॥

अथेन्द्रो नृपतिर्भूत्वा प्रजा धर्मेण पालयन्।
दिवं चकार पृथिवीं स्वपुरीममरावतीम् ॥९८॥१॥

[अथेति नृपतिः सुधन्वाभिधो भूपतिरित्यर्थः

"राज्ञः सुधन्वनः प्राप नगरीं स जयन्निदशः।

—श्रीमच्छंकर दिग्विजय, पृ० २१

प्रत्युद्गम्य क्षितीन्द्रोऽपि विधिवत्तमपूजयत् ॥६२॥ —पृ० २२

"अथ शिष्यवरैर्युतः सहस्रैरनुयातः स सुधन्वना च राज्ञा।
ककुभो विजिगीषुरेष सर्वाः प्रथमं सेतुमुदारधीः प्रतस्थे ॥१॥ १५॥"

× श्रीमच्छंकर दिग्विजय, पृष्ठ ५३५-५३६

+ प्रतिपन्न तु वाह्लिकान्महर्षौ विनयिभ्यः प्रविवृण्वति स्वभाष्यम्।
अवदन्न सहिष्णवः प्रवीणा समये केचिदथाऽऽर्हताभिधाने ॥१४२॥१५॥

—श्री मच्छंकर, पृ० ५७०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की मान्यता प्रचलित रही है। गोंडा जिले के तुलसीपुर नामक स्थान से कुछ ही दूर देवी पाटन नामक स्थान है; जहाँ देवी का पुराना मंदिर है और एक टीला सुरवीर नाम का है। औरंगजेब ने यहाँ की प्राचीन मूर्त्तियों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।‡ सुहिलदेवराय की कुल देवता होने के कारण देवी पाटन का प्रभाव जनता में भी अधिक हो गया था।× देवी पाटन के सूर-वीर टीले का नाम कारण निश्चय ही जैनत्व का परिचायक है। इन स्थानों की गहरी छान-बीन और खोज की जावे तो उनके इतिहास का प्रकाश में आना संभव है! वैसे देवी पाटनी अथवा पटैनी देवी का प्रख्यात मंदिर मध्य-प्रान्त के जब्बलपुर ज़िले में भी है।❀ यहां की देवी की मूर्त्ति चार भुजाओं वाली है, जिसके चारों ओर दिगम्बर (नग्न) मूर्त्तियाँ तथा अन्य देवियों की आकृतियां बनी हुई हैं, जिनके नाम बहुरूपिणी, चामुण्डा, पद्मावती, विजया और सरस्वती खुदे हुये हैं। बाईं तरफ अपराजिता, महामानसी, अनन्तमती, गांधरी, मानसिजाला, मालनी एवं मानुजी नाम लिखे हैं। दाहनी ओर भी सात देवियों के नाम जया, अनन्तमती, वैराता, गौरी, काली, महाकाली और वृजसंकला खुदे हुए हैं। द्वार पर तीन जिन मूर्त्तियों में मध्य में पहले तीर्थङ्कर आदिनाथ की वृषभ के लाञ्छन से युक्त मूर्त्ति हैं। कनिंघम सा० लिखते है कि निःसंदेह यह जैन देवी की मूर्त्ति है।+ ऐसा प्रतीत होता

‡ "भूगोल"—संयुक्तप्रांताङ्क, पृष्ठ २४८।

× "सरस्वती" भा० ३- सं० १ पृष्ठ ३३।

❀ मध्यप्रान्त, मध्यभारत और राजपूताना के प्राचीन जैन स्मारक पृ० १६।

+ "I feel satisfied that the enshrined goddess must belong to Jains."—Cunningham,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

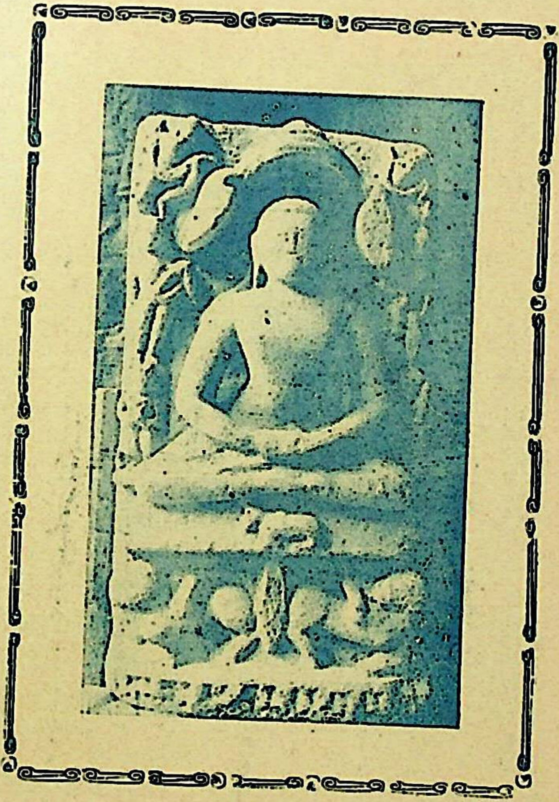

श्रावस्ती से प्राप्त आदिनाथ तीर्थङ्कर की मूर्ति (No. J 857)

(प्रान्तीय संग्राहालय लखनऊ के सौजन्य से)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सिंहवाहिनी अम्बिका देवी की खण्डित मूर्ति (No. J 853)

[सहेट महेट से प्राप्त]

(प्रान्तीय संग्राहालय लखनऊ के सौजन्य से)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है कि जैन तीर्थङ्कर की मूर्तियों के साथ उनके शासन-देवियों की मूर्तियों से युक्त मूर्ति पट्ट का नाम 'पट्ट-देवी' अथवा 'पट्टन देवी' नाम से रूढ़ हो गया। उपरोक्त जो नाम देवियों के दिये गये हैं, उनमें से अधिकांश तीर्थङ्करों की शासन देवियां हैं। इन नामों को पुनः ठीक-से पढ़ने की आवश्यकता है। अतएव यह स्पष्ट है कि देश में पाटन या पट्टैनी देवी के नाम से जो मूर्ति-आराधना प्रचलित थी, वह जैन शासन देवियों की ही पूजा थी। अपने लौकिक-इष्ट-सिद्धि की कामना से गृहस्थ लोग इन शासन देवताओं का आदर-सत्कार करते रहे हैं। वीरवर सुहिलदेवराय उनकी विनय करते हो, तो अस्वाभाविक नहीं। जैन श्रावक होने के नाते उनको जैनशासन की पट्ट देवियों का सत्कार-सम्मान करना उचित ही था।

सुहिलदेवराय और उनके वंशजों ने जैनधर्म की उन्नति के लिये और क्या क्या कार्य किये थे; यह बताने के लिये हमारे पास उपयुक्त साधन नहीं हैं। अवध प्रान्त के जैन मन्दिरों में अगणित जिन मूर्तियों के आसनलेखों, ताम्रयंत्रों पर के लेखों एवं भंडारों में विराजमान शास्त्रों की प्रशस्तियों का संग्रह किया जावे, तो इस दिशा में प्रकाश मिलने की संभावना है। किन्तु खेद है कि जैन सभाओं का ध्यान अभी तक इस आवश्यक कार्य की ओर नहीं गया है। फिर भी जो मूर्त्तियां सहेठ महेठ खनन कार्य में उपलब्ध हुई और जो लखनऊ के प्रान्तीय संग्रहालय में सुरक्षित हैं, उनसे वह पता चलता है कि श्रावस्ती में जैनधर्म का अभ्युदय ११ वीं-१२ वीं शताब्दियों में हुआ था। × वीरकेसरी सुहिलदेवराय ने कई मंदिर और महल एवं

× One of (the Jain images).........was dedicated in Samvat 1133 by Sutan Pandit. This is possibly

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राजदुर्ग बनवाये थे; किन्तु आज उनका पता नहीं है। मुसलमान आक्रमण कारियों ने उनको नष्ट कर दिया अथवा उन को मसजिदों में परिवर्तित कर दिया।

जो हो, वीर केसरी सुहिलदेवराय एक महान् शासक थे। जैनधर्म के लिये वह स्तंभरूप थे। वह स्वयं विद्वान् और कवि थे। अतएव उनके समय में साहित्योन्नति का होना अनिवार्य था। अनुमान किया जाता है कि 'श्रीकण्ठचरित्र' में इन्हीं सुहिलदेव, (सुहृद्ध्वज) का उल्लेख है। काश्मीर के सन्धिविग्राहिक मंत्री अलङ्कार ने अपने यहाँ एक विद्वत्सम्मेलन किया था, जिसमें साहित्य के अनेक महारथी विद्वान् एकत्रित हुये थे। उन विद्वानों में सुहेलदेव भी थे। निःसन्देह सुहिलदेवराय एक महान् वीर, पराक्रमी, प्रतापी, सुशील, धर्म-विवेकी और चतुर शासक एवं सिद्ध साहित्यकार थे। उन्होंने मुसलमानों को युद्ध में पराजित करने के पश्चात् एक दीर्घ काल तक शान्तिपूर्वक राज्य किया था। उनके पश्चात् उनके पुत्र पौत्र भी राज्य करते रहे।

यह अनुमान निराधार प्रतीत होता है कि सुहिलदेवराय कन्नौज के राजपूत-नरेशों के आधीन शासन करते थे; क्योंकि कन्नौज-नरेश तो पहले ही पराजित होकर मुसलमानों का लोहा मान चुके थे। यदि सुहिलदेव कन्नौज के करद होते, तो वे अवश्य अपने सम्राट् के साथ लड़ने के लिये कन्नौज पहुंचते। किन्तु सुहिलदेव ने तो एक स्वतन्त्र युद्ध लड़कर विजय प्राप्त की थी। अतएव सुहिलदेवराय एक स्वाधीन शासक प्रमाणित होते हैं।

---

the period of a revival of Jainism, and restoration of Shrines, after the first wave of Muhammadan invasion had swept away." Hoey. JASB. I Extra No. 1892, p. 56.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक स्वाधीन शासक के रूप में सुहिलदेवराय के श्रावस्ती में रह कर अपनी प्रजा को सुखी बनाया था। अनुमानतः सुहिलदेवराय का राज्य उत्तर में नेपाल तक, दक्षिण में कुसम्भी (कौशाम्बी) तक, पश्चिम में गढ़वाल और पूर्व में वैशाली (मुजफ्फरपुर) तक विस्तृत था! सुहिलदेवराय के सुदृढ़ और नीति पूर्ण शासन से उस क्षेत्र का विशेष अभ्युदय हुआ। श्रावस्ती धन-धान्य से पूर्ण हो गई—उसका व्यापार व्यवसाय खूब ही चमका। घाघरा, सरयू, राप्ती आदि नदियों के प्रवाह से खूब ही व्यापार किया जाता था। साल, खैर, शीशम, बेंत की बनी हुई वस्तुयें, वनौषधि, हाथीदाँत, गाय-भैंस, घोड़े-हाथी, मसाले चावल इत्यादि वस्तुयें विहार, बंगाल, उड़ीसा, दक्षिणपथ आदि देशों को भेजी जाती थीं। श्रावस्ती में धन-कण का पारावार न था। इस समृद्धिशाली स्थिति में भी श्रावस्ती के नागरिक सदाचार और विवेक धर्म को भूले न थे। उनका मार्ग प्रदर्शन जैन गुरु जो किया करते थे। जैन उपाध्यायों के निकट श्रावस्ती के नागरिक ऐसा ज्ञानार्जन करते थे कि वे हर समय हेयोपदेय का ध्यान रखने में सावधान रहते थे। जैन गुरुओं के उपदेश से उन्होंने अपनी लक्ष्मी का सदुपयोग मंदिर, मूर्ति, धर्मशाला, विद्याशाला आदि स्थापित करके किया था। वीरवर सुहिलदेवराय सदृश विवेकी नर के शासनकाल में श्रावस्ती एक वार पुनः अपने खोये हुये वैभव को पाकर मुस्करा उठी थी। सुहिलदेवराय के इक्कीस सामन्त-गण उसके गौरव को बढ़ाने में तल्लीन रहते थे। भूरायचा दुर्ग को सुहिलदेवराव के छोटे भाई भूरायदेव ने समुन्नत बनाया था।×

× भूरायचा दुर्ग बहराइच का पूर्व नाम है। यहाँ के बालार्क-तीर्थ का उद्धार भूरायदेव ने किया था।

— श्री देवकीप्रसाद लिखित राजा सुहेलदेवराय ट्रेक्ट देखो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वही उस दुर्ग के अधिनायक थे। उनके एक दूसरे छोटे भाई मल्हराय थे। उन्होंने अपने नाम से दुर्ग बनाया, जो 'मल्हरायदेव दुर्ग' (मल्हिपुर) कहलाया था। राजा सुहिलदेव राय के अङ्गरक्षक भागमणि नानपारा के समीप दुर्गों के गढ़-पति थे। उनके विश्वासपात्र सामन्त कर्णदेव भी किसी से पीछे न रहे। उन्होंने 'कर्णगढ़' नामक सुदृढ़ दुर्ग निर्माण कराया था। सुहलदेवराय जी के दूसरे अङ्गरक्षकों में सामन्त जगमणि-देव और सुजौली के सामन्त बलभद्रदेव देश के अभ्युदय में सब से आगे बढ़ गये—उन्होंने वन प्रदेश का उद्धार किया और निशान गढ़ आदि दुर्गों को बनवाकर अपने नाम अमर कर दिये। इस प्रकार अनेक दुर्गों, महलों, मंदिरों से श्रावस्ती राज्य अलंकृत किया गया था।

राजा सुहलदेवराय ने श्रावस्ती का राजभोग कितने समय तक किया, इसको बताने के लिये कोई साधन इस समय उपलब्ध नहीं है। आचार्य विमलदेव के शिष्य समूह से धर्मामृत का पान करके सुहिलदेवराय ने अपनी आत्मा का हित साधा और लोक का कल्याण किया। वह एक आदर्श श्रावक और देशोद्धारक के रूप में हमेशा ही भारत के इतिहास में अमर रहेंगे।

"भर-सूर्य अस्ताचल गया तो भी प्रगट गत लालिमा !"

———

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सहेट महेट से प्राप्त एक शिलापट्ट, (No. J 871)
जिसमें एक दम्पत्ति बालक को गोद में लिए हुए चित्रित है और एक
तीर्थङ्कर की प्रतिमा ऊपर बनी है।
(प्रान्तीय संग्रहालय लखनऊ के सौजन्य से)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

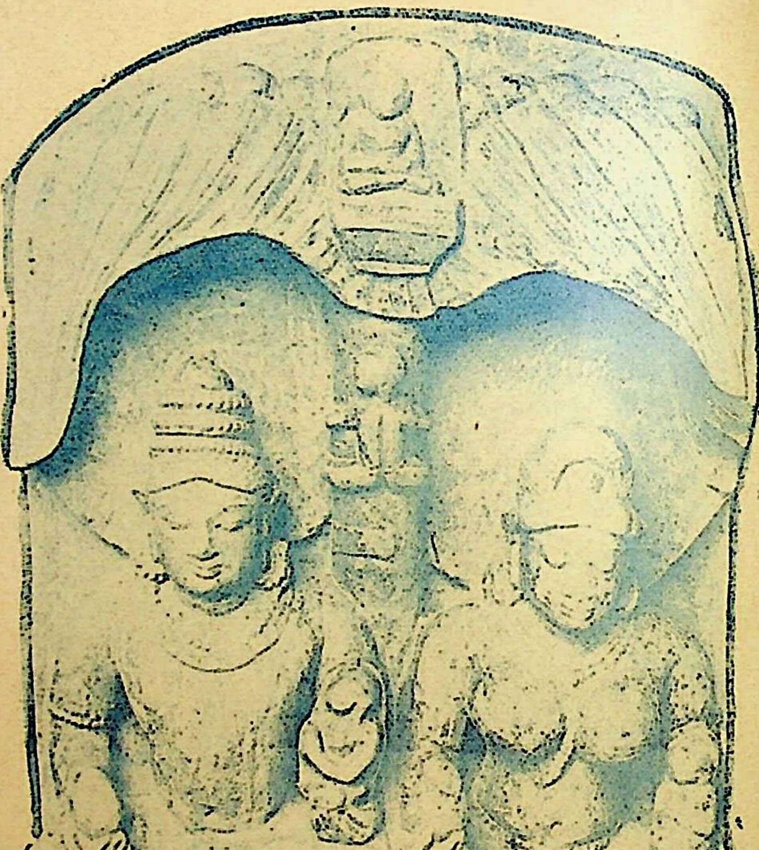

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सहेठ महेठ से उपलब्ध पुरातत्व

श्रावस्ती के खंडहरों, सहेठ महेठ की खुदाई में जो प्राचीन कीर्तियाँ उपलब्ध हुईं, वे लखनऊ के प्रान्तीय सम्रहालय और कलकत्ते के भारतीय संग्रहालय में सुरक्षित रक्खी गई हैं। सहेठ-महेठ से प्राप्त इस पुरातत्व-सामिग्री में जैन कीर्तियाँ ही अत्य-धिक हैं। यह इस बात की ओर संकेत करती हैं कि श्रावस्ती में जैनों का प्रावल्य और वाहुल्य रहा है। लखनऊ के प्रान्तीय संग्रहालय में जो मूर्तियाँ रक्खी हुई हैं; उनकी सूची और सचित्र परिचय हम यहाँ पर संग्रहालय के अध्यक्ष श्रीमान् मनमोहनजी नागर की कृपा से देने में समर्थ हैं। संग्रहालय के कस्टोडियन श्री नीलकंठ ल० जोशी जी ने उनके विषय में जो परामर्श दिया उसका भी समुचित उपयोग हम यहाँ कर रहे हैं। हम इन दोनों महानुभावों का आभार स्वीकार करते हैं। संग्रहालय में जैन कीर्तियों की सूची निम्न प्रकार है:—

मूर्ति J 847 आदिनाथ (२'--५" × १'—६½")

„ J 848 „ (१'—६½" × ११½")—संभवनाथ (सोमनाथ) मन्दिर से प्राप्त।

„ J 849 नेमिनाथ—कृष्णपाषाण की पद्मासन प्रतिमा। (१'—४" × ८½")

„ J 850 खड्गासन तीर्थंकर (१'—५" × ८½")

„ J 851 सुविधिनाथ (पद्मासन-दो खंडों में)— (२'–१" × १'–२")

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मूर्ति J 852 तीर्थङ्कर मूर्ति का ऊपरी भाग (१'–२" × १–३½")
" J 853 अम्बिका (१'—६" × १'—१½")
" J 854 धूप में पकाई मिट्टी की स्त्री मूर्ति—
(२'—५" × १'—६½")
" J 855 संभवनाथ (२'—६" × १—२½")
" J 856 श्रेयांसनाथ ध्यानमुद्रा में पद्मासन मूर्ति—
(२'—५" × १'—५")
" J 857 आदिनाथ (शोभनाथ मन्दिर से)
(१'—१०" × १'—१")
" J 858 नेमिनाथ (२'—१" × १'—३")
" J 859 पार्श्वनाथ—ध्यानमुद्रा में पद्मासन—
(१'—४" × २")
" J 860 एक दम्पति वृक्ष तले बैठे हुये। वृक्ष के पत्तों में आदिनाथ मूर्ति—(२'—२¾" × १'—२½")
" J 861 पाषाणावशेष जो किसी चक्र का घेरा प्रतीत होता है।
" J 862 शोभनाथ मन्दिर से प्राप्त एक लेखाङ्कित मूर्ति आसन—(६½" × १½)
" J 863 एक तीर्थंङ्कर मूर्ति का अवशेष (६" × १०")
" J 864 " " " (१'–६¾" × १०¾")
" J 865 आलीढ़ आसन में खड़ी एक मानव मूर्ति का निम्न भाग, जिसके चरणों के बीच में एक घट है।
" J 866 मस्तक रहित तीर्थङ्कर मूर्ति (१०½" × ६½")
" J 867 " " " (८" × ६")
" J 868 वृक्ष पर खड़गासन जैन मूर्ति—सेवक बायें हाथ में एक कमलपुष्प लिए है। (१'—२½" × ७")

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मूर्ति J 869 वृक्ष तले दम्पति—स्त्री की गोद में बालक कृष्ण-पाषाण—(१०३" × ७३")

„ J 871 वृक्ष तले दम्पत्ति—दोनों की गोद में बालक और घट सदृश पात्र लिये हुए। पत्तों में जैन मूर्ति। एक नारी आकृति वृक्ष पर चढ़ती हुई अंकित है। (१'—३" × १०")

„ J 872 वृक्ष तले बैठे दम्पति—(१' × ८")

„ J 873 तीर्थङ्कर (पद्मासन १' × ८३")

„ J 874 पाषाणावशेष जिस पर एक दम्पति मूर्ति बनी हुई है।

„ J 875 महावीर (पद्मासन)—(१०" × ७३")

„ J 876 आदिनाथ—नागरी लेख सहित — (१'--१०" × १'—१०")

„ J 877 पार्श्वनाथ—खंडित—(१'-१०" × ११")

„ J 878 „ (१'—२३" × १'—४३")

„ J 879 „ (पद्मासन)

„ J 880 महावीर (पद्मासन) सं० ११३५ विक्रमीय

„ J 880 A नेमिनाथ („) सं० ११३२ „

जैनेतर पुरातत्व

„ B 356 खंडित बुद्ध प्रतिमा जिस पर ७ वीं शताब्दि का शिला लेख है।

„ E 18 बौद्ध शिलालेख

325 फरसा लिये एक पुरुष

326 धनुषधारी योद्धा

B 593 चतुर्भुजी खण्डित मूर्ति

B 592 दुर्गादेवी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

B 289 शिलापट जिस पर राक्षस अङ्कित है।
333 मल्ल योद्धा।
335 हनूमान किसी से मल्लयुद्ध लड़ते हुए।
313 बाजेवाले।
B 594 एक शिलापट पर जाँघिया पहने बन्दर (बुद्ध-प्रतिमा का शिरोभाग।)
B 597 शिलापट्ट पर बौना।
B 596 माला लिये गूजरी।
B 599 बोधिसत्व का शिरोभाग।
B 591 " " ।

कलकत्ते के संग्रहालय में केवल तीन मूर्तियाँ निम्न प्रकार हैं, जो शोभनाथ (संभवनाथ) मंदिर की खुदाई में मिली थीं:—

६४४ सुमतिनाथ
६४५ "
६४६ जिन

नं० १३५८ प्राचीन श्रावस्ती का चित्रपट है। इस प्रकार श्रावस्ती से प्राप्त पुरातत्व जैन, बौद्ध और वैदिक कीर्तियों को लिये हुए है। जैन कीर्तियों से कई मूर्तियों के चित्र हम यहाँ उपस्थित कर रहे हैं। यह मूर्तियां प्राय मध्यकालीन कला के सुन्दर अवशेष हैं। आततायियों ने निर्मम हो इन कलामय मूर्तियों को नष्ट-भ्रष्ट किया ही, उधर प्रकृति के प्रकोप ने भी इनके रहे-सहे सौन्दर्य को नष्ट कर दिया। फिर भी वे अपने रूप में अनूठी हैं और भारतीय कला के इतिहास के लिये मूल्यमई कृतियां हैं। इन कीर्तियों में नं० जे ८६० का चैत्यवृक्ष-पट निश्चितरूपेण उत्तर गुप्तकालीन कीर्ति है। इस प्रकार की कर्तियां अपूर्व हैं और उत्तरपूर्व भारत में ही मिलती हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[सहेट महेट से प्राप्त]

एक शिला पट्ट (No. J 860)

जिसमें एक दम्पत्ति वृक्ष के नीचे बैठे हुए चित्रित किए गए और वृक्ष में जिन मूर्ति अङ्कित है।

(प्रान्तीय संग्रहालय लखनऊ के सौजन्य से)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन शिलापटों पर एक वृक्षतले दम्पति युगल अङ्कित होते हैं और वृक्ष के पत्तों में जिनेन्द्र की प्रतिमा बनी होती है। निम्न-भाग में भक्तों की पंक्ति उत्कीर्ण होती है। श्रावस्ती के खंडहरों से ऐसे कई शिलापट मिले हैं। बंगाल-विहार में कई जैनावशेषों में ऐसे चैत्यवृक्ष कीर्तियों का उल्लेख स्व० ब्र० शीतलप्रसाद जी ने अपने 'प्राचीन जैन स्मार्कों, में किया है। कलकत्ता के संग्रहालय में एक ऐसा ही शिलापट है। कोई २ विद्वान् इनको कल्पवृक्ष अनुमान करते हैं, जिनके तले युगलिया दम्पति बैठे हुये बताते हैं। किन्तु कल्पवृक्षों पर जिनेन्द्र प्रतिमा नहीं होती इसलिये इनको कल्पवृक्षों का चित्रण कहना ठीक नहीं भासता। जिन प्रतिमा चैत्यवृक्षों में होती है। 'मुनिसुव्रत-काव्य ×' में चैत्यवृक्षों के नीचे जिन प्रतिमा का विराजमान होना लिखा है। उपलब्ध वृक्ष-कीर्तियों में वृक्ष के मध्य पत्रों में जिन प्रतिमा अङ्कित है। यह परिवर्तन समयानुसार भक्तजनों की रुचि अनुकूल हुआ कहा जा सकता है। किसी में तीर्थङ्कर के माता-पिता अङ्कित किये गये और किसी में तीर्थङ्कर के शासन देवता। संभव है, अन्य शास्त्रों में इस प्रकार की रचना का विधान मिल जावे। तीर्थङ्कर भगवान् के समोशरण में इन चैत्यवृक्षों का विशेष स्थान है। प्रस्तुत पुस्तक में ऐसे दो चैत्य-वृक्ष-पटों के चित्र उपस्थित किये जा रहे हैं। इनमें से नं० जे ८६० का चैत्यवृक्ष सुन्दर उत्तरगुप्तकालीन कला का नमूना है। प्रकृति की सर्दी-गर्मी और वर्षा के प्रकोप ने यद्यपि आकृ-

---

× 'अर्च्चा जिनस्य वन चैत्यमहीरुहाणामच्छिन्नधार मकरन्दमुचां तलेषु।
चक्रुर्निरत्ययतपात्ययोग निष्ठा निष्कंपगात्र जिनयोगिवराभिशंकाः ॥१८॥ सर्ग १०।

'वनचैत्यमहीरुहाणां = वनभूमिस्थ चैत्यवृक्षाणां।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तियों के रूप-सौष्टव को मिटा-सा दिया है, फिर भी उनकी कमनीयता सर्वथा मिटी नहीं है। चिबुकों का सौन्दर्य, गालों पर पड़ने वाले गट्टे, अङ्गोपाङ्ग का सुडौल घुमाव और सम-संस्थान आदि अब भी स्पष्ट प्रतीत होते हैं; जो गुप्तकालीन प्रतिमाओं के विशेष लक्षण हैं। इस शिलापट में वृक्षतले बैठे हुये दम्पति तीर्थङ्कर के माता-पिता हो सकते हैं; क्योंकि शासन देवताओं की आकृतियों के अनुरूप वह नहीं है। नं० जे ८७१ के दूसरे चैत्यवृक्ष चित्राङ्कण में संभव है कि दम्पति यक्ष-यक्षी हों। उनकी गोद में बालक हैं और एक हाथ में कोई पात्र है। इसके अलङ्कार परवर्ती काल के अनुरूप है। अतः यह मूर्ति मध्यकालीन हैं।

नं० जे ८५३ एक देवी को, संभवतः अम्बिका देवी की मूर्ति है, क्योंकि इन शासन देवता का वाहन सिंह है, जो इस मूर्ति में भी अङ्कित है। इस मूर्ति के अलंकार इसको मध्यकालीन ठहराते हैं।

नं० जे ८५५ की मूर्ति तीर्थङ्कर संभवनाथ की खड्गासन प्रतिमा है। संभव है यही प्रतिमा श्रावस्ती के 'सोभनाथ मंदिर' की मूलनायक प्रतिमा रही हो। आसन में घोड़ों के चिह्न और धर्मचक्र बने हुए हैं, चौरीवाहक भी हैं।

नं० जे ८६५ में जिनेन्द्र की पद्मासन मूर्ति है। संग्रहालय में इसका परिचय श्रेयांसनाथ तीर्थङ्कर के रूप में किया गया है, क्योंकि आसन में गेंडा का चिह्न अङ्कित है। आसपास चार पद्मासन जिन मूर्तियाँ, चामरवाहक और अप्सरायें अङ्कित हैं। छत्रत्रय के ऊपर एक व्यक्ति ढोलक-सी बजाता हुआ दर्शाया है। आसन में सिंहों के बीच में धर्मचक्र बना हुआ है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[सहेट महेट से प्राप्त]

भगवान महावीर की मूर्ति के आसन पर उत्कीर्ण शिलालेख (J 872

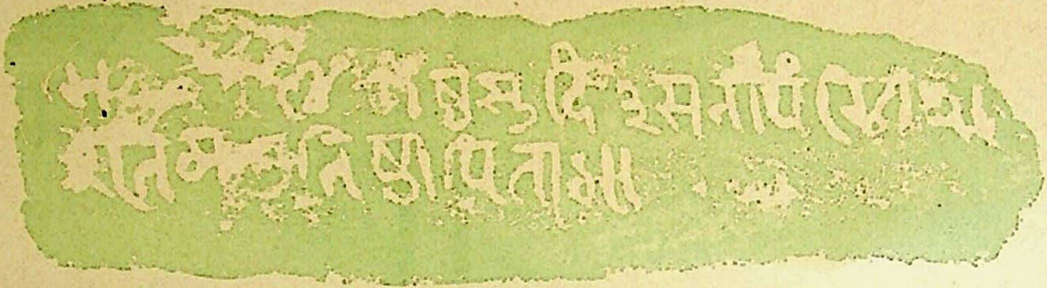

[सहेट महेट से प्राप्त]

एक जैन मूर्ति के आसन पर अंकित शिलालेख (J 872

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नं० जे ८५७ तीर्थङ्कर ऋषभनाथ अथवा आदिनाथ की पद्मासन मूर्ति है, जो वर्षा में पड़ी रहने के कारण घिस गई है। मध्यकालीन जैन कला का यह सुन्दर नमूना रहा होगा। मूर्ति के आसन में बैल का चिन्ह बना हुआ है। सिंहासन के दो सिंह और बीच में धर्मचक्र सुन्दर रूप में बनाये गये हैं। कई चामर वाहक और विद्याधर भी अङ्कित हैं।

नं० जे ८८० का मूर्ति तीर्थङ्कर नेमिनाथ की बड़ी ही मनमोहक साङ्गोपाङ्ग पद्मासन प्रतिमा है, जिसके दर्शन करते ही आत्माल्हाद होता है। कला की दृष्टि से भी यह मूर्ति महत्व पूर्ण है। मध्यकालीन जैन कला के लिये यह मूर्ति अत्यन्त मूल्य-मई और सुन्दर कृति है। सिंहासन के दोनों सिंह कलामय तो बनाये गये ही हैं, परन्तु विशेषता यह है कि उनकी मुखाकृतियों पर शान्ति ही नाच रही है। बीच में खड़ा धर्मचक्र बना हुआ है। छत्रत्रय और प्रभामंडल युक्त नेमिजिनेन्द्र की मूर्ति ध्यान-मुद्रा में वीतराग विज्ञानता का ही पाठ पढ़ा रही है। उस पर दृष्टि डालते ही मन में शान्ति और सतोष का सागर उमड़ आता है। इधर-उधर विद्याधर और अप्सरायें भक्ति का प्रदर्शन कर रहे हैं। ऊपर दो सुन्दर हाथी अपनी सूड़ों में मंगल कलश लिये हुए हैं और एक व्यक्ति ढोलक-सी बजा रहा है। इस मूर्ति में अलङ्कार-सौष्टव भी दर्शनीय है। क्या ही अच्छा हो यदि इस मूर्ति को संग्रहालय से प्राप्त करके पुनः सहेठ-महेठ मे प्रस्थापित किया जावे। श्रावस्ती में जिन मन्दिर का उद्धार करके इस प्राचीन प्रतिमा को उसमें विराजमान कराने का यश धर्म-वत्सल वीरों को प्राप्त करना उपादेय है।

अन्तिम चित्र बी ३५६ नं० गौतम बुद्ध की खंडित मूर्ति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का है, जो ईस्वी ६ वीं या ७ वीं शताब्दी में निर्माण की गई थी। इसके लेख में श्रावस्ती का नामोल्लेख है।

इसी प्रकार श्रावस्ती की अन्य कीर्तियां हैं जिनके चित्र यहाँ नहीं दिये जा सके हैं। अलबत्ता पुराने मन्दिर और नये धर्मशाला के भी चित्र दिये जा रहे हैं। इनका उद्धार होना आवश्यक है।

जैन मूर्तियों के आसन पर जो शिलालेख उत्कीर्ण हैं, वे निम्न प्रकार हैं। उन तीनों के प्रतिच्छाया चित्र भी दिये जा रहे हैं :—

(१) नं० जे ८६२ :—

"संवत् ११३ (३ ?) ज्येष्ठ सुदी ३ सनौ पंडित श्री स·········
···········प्रतिष्ठापिता: ॥"

(२) नं० जे ८७२ तीर्थङ्कर महावीर की मूर्ति के आसन पर :—

"संवत् १२३४ ज्येष्ठ सुदि··················सुम················"
यह लेख मूल में ही अत्यन्त अस्पष्ट है। श्री जोशी जी ने सं० १२२४ पढ़े हैं।

(३) नं० जे ८८० अ भ० नेमिनाथ की मूर्ति के आसन पर उत्कीर्ण लेख इस प्रकार पढ़ने में आता है। यह है भी बहुत स्पष्ट :—

"संवत् ११३३ ज्येष्ठ सुदी ३ सनौ पंडित श्री सोमदेव तस्य सिष्य विमलदेव प्रतिमा प्रणाम्य··············· ।"

इन शिलालेखों से यह स्पष्ट है कि श्रावस्ती में जिन दिगम्बर जैनाचार्यों की परम्परा विद्यमान थी, उनके नामों के अन्त में 'देव' पद आता था। जैनमान्यता है कि श्री अर्हद्बलि आचार्य ने जिन चार संघों की स्थापना की थी, उनमें एक 'देवसंघ'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ष्कस्ह इसमेवं रे तथा सामडे दतरपविषाहि ॥ यदिदप

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi